सन्त-पत्रावली

भाग-3

मानव सेवा संघ के प्रवर्तक ब्रह्मलीन

सन्त प्रवर पूज्यपाद स्वामी

श्री शरणानन्द जी महाराज

की अमृत वाणी

प्रकाशक :

मानव सेवा संघ, वृन्दावन (मथुरा)

सन्त पत्रावली

भाग-3

मानव सेवा संघ के प्रवर्तक ब्रह्मलीन
सन्त प्रवर पूज्यपाद स्वामी

श्री शरणानन्द जी महाराज

की अमृत वाणी

मानव सेवा संघ प्रकाशन
वृन्दावन (मथुरा)
पिन- 281121

- ☐ प्रकाशक : मानव सेवा संघ
  वृन्दावन (मथुरा)
  पिन-281121
  दूरभाष : 0565-2456995
  2442778
- ☐ सर्वाधिकार सुरक्षित
- ☐ संस्करण : प्रथम संस्करण
  4000 प्रतियाँ
  दिसम्बर, 2004
- ☐ गीता जयन्ती : [illegible] 2004
- ☐ मूल्य : Rs 15 00
- ☐ मुद्रक : एस॰ एच॰ फाईन आर्ट प्रैस
  घोसियान मोहल्ला, करनाल
  दूरभाष : 0184-2254069

प्रार्थना (1)

(प्रार्थना आस्तिक प्राणी का जीवन है तथा
साधक के विकास का अचूक उपाय है।)

मेरे नाथ! आप अपनी, सुधामयी, सर्व-समर्थ, पतित-पावनी, अहैतुकी कृपा से, दुःखी प्राणियों के हृदय में, त्याग का बल एवम् सुखी प्राणियों के हृदय में, सेवा का बल प्रदान करें, जिससे वे सुख-दुःख के बन्धन से मुक्त हो, आपके पवित्र प्रेम का, आस्वादन कर, कृतकृत्य हो जाएँ।

ॐ आनन्द! ॐ आनन्द!! ॐ आनन्द!!!

प्राक्कथन

जिस मार्ग से महापुरुष गमन करते हैं, सर्व-साधारण के लिए वही श्रेष्ठ एवं अनुसरणीय है-महांजनो येन गतः स पन्थाः। ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री महाराज जी ने अपने जीवन में स्वयं सत्य का साक्षात्कार कर, जिस पथ का निर्माण किया, वह संघ की साधन-पद्धति के नाम से अभिहित है। वे सन्तों की उज्ज्वल परम्परा के एक अनुपम रत्न थे, जिन्होंने जीवन के सत्य को जस-का-तस बे-लाग साधकों के सम्मुख रखा। उनके श्रीमुख से निःसृत आप्त वाक्य सत्पथ के अनुगामियों के लिये दीप-स्तम्भ हैं।

श्रीमहाराज जी के सम्पर्क में आये महानुभावों को विदित ही है कि उनमें जीवन की गूढ़-से-गूढ़ समस्याओं के स्वतःस्फूर्ति एवं समुचित समाधान प्रस्तुत कर देने की अद्भुत क्षमता थी। साधकों के प्रश्न करते ही, वे अविलम्ब उसका ऐसा अनूठा समाधान प्रस्तुत कर देते थे कि प्रश्नकर्त्ता अवाक् रह जाता। अपने जीवनकाल में उन्होंने अनेक सत्याभिलाषियों को जीवन की राह दिखायी।

विभिन्न सत्संग समारोहों एवं सत्चर्चा-आयोजनों के अवसरों पर दिये व्याख्यानों के अतिरिक्त पत्रों के माध्यम से भी श्रीमहाराज जी ने अनेक साधकों की मानसिक गुत्थियों को सुलझाया। इन पत्रों का एक संकलन पूर्व में 'सन्त-पत्रावली भाग-1' के रूप में प्रकाशित हो चुका है, जिसमें सन् 1950 तक के पत्र सम्मिलित किये गये थे। सन् 1950 से लेकर लगभग श्रीमहाराज जी के भौतिक कलेवर त्यागने के समय तक के साधकों से उपलब्ध पत्रों का संकलन 'सन्त-पत्रावली भाग-2' के रूप में प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। कतिमय

साधकों से पुनः मूल पत्र एकत्रित हुये हैं। उनका संकलन 'सन्त पत्रावली भाग-3' के रूप में प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत है। विवेक की परख प्रज्ञा से प्रकाशित इन पत्रों की भाषा सरल, सरस एवं सुबोध है तथा शैली प्रवाहमान और मौलिक है। श्रीमहाराज जी का शब्द-चयन उत्कृष्ठ कोटि का एवं सुरूचिपूर्ण है। व्यक्तिगत कठिनाइयों के परिप्रेक्ष्य में लिखे गये पत्रों के उत्तर-स्वरूप जो सार्वकालिक एवं सार्वभौमय समाधान श्रीमहाराज जी ने प्रस्तुत किये, वही इस पत्रावली का कलेवर है। हृदय को स्पर्श करने वाले श्रीमहाराज जी के ये आप्त वचन, वे शाश्वत स्वर हैं, जिनकी अलौकिक आभा कालजयी है।

सत्य के शोधकों के लिए ये वाक्य-दीप पथ का अवलम्ब सिद्ध होंगे, इसी आशा एवं विश्वास के साथ यह पत्र-पुष्प प्रेमियों की सेवा में समर्पित हैं।

वृन्दावन
गीता जयन्ती
22, दिसम्बर 2004

निवेदक -
अद्वैत चैतन्य
अध्यक्ष, आजीवन कार्यकर्त्ता समिति
मानव सेवा संघ, वृन्दावन

स्वामी श्री शरणानन्द जी महाराज के पत्र

1

मानव सेवा संघ आश्रम

वृन्दावन

24-10-1952

स्नेहनिष्ठ कर्त्तव्यमयी प्रिय पुत्री,

बहुत-बहुत प्यार। पत्र के स्वरूप में भेंट हुई।

जिस प्रकार औषधि रोग को खाकर स्वयं मिट जाती है और फिर केवल आरोग्यता ही शेष रहती है, उसी प्रकार विचार अविचार को खाकर स्वयं मिट जाता है और फिर अपने में ही अपने परम प्रेमास्पद का अनुभव होता है, अर्थात् स्वरूप की एकता हो जाती है, जो वास्तव में सर्वदा ज्यों-का-त्यों है।

विचार किया नहीं जाता, हृदय रोता है। जो कुछ किया जाता है, उसका जन्म तो देहाभिमान से होता है। अपने मन को समर्पण करने पर इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि सभी सम हो जाते हैं, अर्थात् स्वाभाविक निर्विकल्पता आ जाती है। उसके पश्चात् विचार स्वयं उदय होता है, जो सब प्रकार के अभिमानों का अन्त कर, परम तत्त्व से अभिन्न कर देता है। जो कुछ हो रहा है, उसे माया-मात्र समझो। सभी को अपने में और अपने को सभी में अनुभव करो। बस यही अनन्यता है। यह जो प्रतीत होता है, उसकी प्राप्ति कदापि नहीं होती। उससे विमुख होने पर ही अपने में अपने प्रियतम का अनुभव होता है। "यह" से विमुख होना अभ्यास साध्य नहीं है, अपितु विवेक से विमुखता प्राप्त होती है। बस, यही प्राणी का परम् पुरुषार्थ है।

मन, इन्द्रिय आदि में क्रियाशीलता है, चेतना नहीं है। चैतन्य तो तुम्हारा निज स्वरूप है। क्योंकि तुम स्वयं अपने को और अपने से भिन्न मन, बुद्धि आदि को जानती हो।

जो सबको जानता है, उसे और कोई नहीं जान पाता। सर्व के ज्ञाता को अपने में देखो। अर्थात् तुम स्वयं में सर्व की ज्ञाता हो, ऐसा अनुभव करो। मन को निर्विकल्प और बुद्धि को शान्त तथा हृदय को प्रीति से भर दो। ज्यों-ज्यों हृदय राग-द्वेष रहित होता जाएगा, त्यों-त्यों त्याग-प्रेम स्वतः बढ़ता जाएगा।

किसी से ममता न रहे, यही त्याग है। त्याग राग को खा लेता है। सभी में अपना दर्शन हो, यही प्रेम है। प्रेम, द्वेष को खा लेता है, त्याग से असंगता-निर्वासना स्वतः आ जाती है, यही वास्तव में मुक्ति है। प्रेम से अभिन्नता और अभिन्नता से एकता आ जाती है। यही वास्तव में भक्ति है। भक्ति और मुक्ति दोनों ही तुम्हारे निज स्वरूप की दिव्य घटा है। भोग-वासना ने तुम्हें इनसे विमुख किया है। अतः उनका विवेकपूर्वक अन्त कर दो। बस, बेड़ा पार है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

- ❖ अविचल विश्वास उसी में हो सकता है, जिसके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते।
- ❖ चिरशान्ति ही सामर्थ्य की जननी है।
- ❖ सन्देह की वेदना में ही जिज्ञासा की जागृति निहित है।
- ❖ जिज्ञासा की जागृति कामनाओं को खा लेती है।
- ❖ कामनाओं की निवृत्ति में ही जिज्ञासा की पूर्ति निहित है।
- ❖ निःसन्देहता में ही प्रेम की अभिव्यक्ति निहित है।
- ❖ सामर्थ्य में ही स्वाधीनता निहित है।

2

त्रिवेणी तट
प्रयाग
9.1.53

परमास्तिक आदरणीया स्नेहमयी,

सादर सप्रेम यथोचित स्नेह !

मानव सेवा संघ ने हमें यही सिखाया है कि हम अपने प्रत्येक कार्य में विवेक का पूरा-पूरा उपयोग करें और अपने को सुन्दर बनाकर समाज को सुन्दर बनायें। दूसरे के अधिकारों की रक्षा करते हुए अपने अधिकार को भूल जाएँ और आध्यात्मिक जीवन द्वारा वास्तविक स्वाधीनता प्राप्त कर, अपने में ही अपने प्रीतम का अनुभव कर, अचिन्त हो जाएँ।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,
शरणानन्द

3

काशी
27.2.53

परमास्तिक स्नेहमयी पुत्री।

मानव सेवा संघ के नियमों पर विश्वास करना ही पालन करने की शक्ति प्रदान करेगा; कारण, कि जिस पर विश्वास हो जाता है, उससे सम्बन्ध हो जाता है और जिससे सम्बन्ध हो जाता है, उसके प्रति प्रियता उत्पन्न होती है, और जिसके प्रति प्रियता उत्पन्न हो जाती है, उसके अनुरूप मानव का स्वभाव बनने लगता है। अतः वर्तमान का विश्वास भविष्य में जीवन बन सकता है।

संकल्पों का साक्षी सर्वदा संकल्पों से अतीत है। प्रत्येक संकल्प माया मात्र है। वह साक्षी की सत्ता से ही सत्ता पाता है। संकल्पों की अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। विवेक की दृढ़ता होने पर सभी संकल्प भुने हुए बीज के समान केवल देखने मात्र के लिये रह जाते हैं। उनमें पुनः उपजने की शक्ति नहीं रहती। उनका उत्पन्न होना, न होना समान ही अर्थ रखता है। सब कुछ होने पर भी निर्विकल्पता बड़े ही महत्त्व की वस्तु है; कारण, कि निर्विकल्पता से ही विवेक की दृढ़ता तथा वीतरागता की उपलब्धि होती है। अतः जो कुछ हो रहा है, उसको साक्षी भाव से देखते हुये, उससे पूर्ण असंगता का अनुभव करो और असंगतापूर्वक अपने परम प्रेमास्पद से अभिन्न हो जाओ। असंगता, मुक्ति और अभिन्नता भक्ति है। इन दोनों के साथ सदैव रमण करती रहो।

सभी प्रियजनों को सादर सप्रेम यथोचित निवेदन करना। पुनः तुमको बहुत-बहुत मधुर स्नेह !

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

4

जयपुर

21.8.53

सौभाग्यवती, स्नेहमयी,

सादर सप्रेम यथोचित तथा बहुत-बहुत मधुर स्नेह !

बुद्धि रूपी काँच से जो कुछ दीख रहा है, उससे अपने को विमुख करलो और अचिन्त्य हो जाओ। सब प्रकार के चिन्तन से रहित होते ही विषय इन्द्रियों में, इन्द्रियाँ मन में, मन बुद्धि में और बुद्धि, जो उसके

परे है, उसमें विलीन हो जायेगी। उसके विलीन होते ही, उस स्वयं प्रकाश निज स्वरूप का बोध स्वतः होगा, जिसके प्रकाश से सभी प्रकाशित हैं एवं जिसकी सत्ता से सभी सत्ता पाते हैं। अपने को सब ओर से हटा लेने पर, अपने में ही अपने परम प्रेमास्पद प्रभु का अनुभव होता है, क्योंकि अपने से 'अपने' को कोई अलग नहीं कर सकता। अपने लिये अपने से भिन्न की आशा न करो। अपने में ही संतुष्ट होकर 'अपने' को पा जाओ। बस, बेड़ा पार है। जो कुछ हो रहा है अथवा जो कुछ दिखाई दे रहा है, उसे माया-मात्र समझो अथवा इसमें अपने ही प्रीतम का अनुभव करो, तभी चिर शान्ति तथा स्थायी प्रसन्नता मिलेगी।

तुम्हारे प्रेम से हरी-भरी भेजी हुई राखी प्राप्त हुई। सर्व समर्थ प्रभु तुम्हें विवेक प्रदान करें। जिससे तुम प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग कर, अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ हो जाओ। यही मेरी सद्भावना है।

पुनः तुमको बहुत-बहुत मधुर स्नेह !

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा पिता,

शरणानन्द

5

पुष्कर

28.8.53

सौ० स्नेहमयी,

सादर सप्रेम यथोचित तथा बहुत-बहुत स्नेह !

मन के निर्विकल्प होने पर मन स्वयं बुद्धि में विलीन हो जाता है, और फिर सब प्रकार का चिंतन स्वतः मिट जाता है। चित्त की चिन्तन रहित दशा, जिसके प्रकाश से प्रकाशित है, उस स्वयं प्रकाश में अनन्य

प्रेम होना चाहिए। वह प्रेम ज्यों-ज्यों सबल तथा स्थायी होता जाता है त्यों-त्यों सब प्रकार के अभिमान स्वतः गलते जाते हैं; देखने का भी अभिमान शेष नहीं रहता। परन्तु देखने वाला ज्यों-का-त्यों सदैव अपनी महिमा में आप रमण करता है, पर कर्त्ता-पन नहीं रहता। अर्थात् जो कुछ हो रहा है, उसे देख कर, उस दिखने वाली अवस्था से विमुख हो जाओ और अपने में ही प्रीतम को पाकर अपने को कृतकृत्य कर लो। अपने में अपने प्रेम का प्रवाह नित-नव बढ़ता रहे। जो सब ओर से विमुख हो कर, अपने में ही 'अपने' को पा लेता है, उसे कुछ भी करना शेष नहीं रहता। प्रत्येक क्रिया तथा शून्य का साक्षी सभी क्रियाओं तथा शून्य से अतीत है। उस अतीत में ही जिसका अहंभाव विलीन हो गया है, वही अखण्ड आनन्द को पाकर कृतार्थ हुआ। हृदय प्रीति से भरा रहे। मन निर्विकल्प होकर बुद्धि में विलीन हो जाए और इन्द्रियाँ विषयों से विमुख होकर मन में विलीन हो जाएँ, यही जीव का परम पुरुषार्थ है। भोग-वासनाओं का अन्त होने पर, इन्द्रियाँ विषयों से विमुख हो, मन में विलीन हो जाती हैं, और फिर मन सब प्रकार के संकल्पों से रहित होकर विवेक में विलीन हो जाता है।

विवेक का सूर्य उदय होते ही यह जो कुछ दिखाई देता है, उससे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है और फिर भोग 'योग' में तथा अविवेक 'बोध' में परिवर्तित हो जाता है,। योग, अर्थात् सब प्रकार के चिन्तन से रहित होते ही, बोध स्वयं हो जाता है, और फिर केवल दिव्य चिन्मय परमतत्त्व से अनन्य प्रेम, बिना ही प्रयत्न के स्वतः हो जाता है, जिससे अखण्ड अनन्त रस की उपलब्धि होती है, जो वास्तव में तुम्हारा निज स्वरूप है।

❖ संसार के जितने कर्म हैं, वे शरीर तक रहते हैं, "मैं" तक नहीं पहुँचते। "मैं" की खोज करने के लिये शरीर का आश्रय छोड़ना पड़ता है। "मैं" को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते "मैं" "है" में विलीन हो जाता है।

प्रियजनों को सप्रेम यथोचित निवेदन करें। पुनः आपको बहुत बहुत मधुर स्नेह !

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

आपका,

शरणानन्द

6

जयपुर

20.7.54

सौभाग्यवती स्नेहमयी प्रिय पुत्री,

सच तो यह है कि शरीर स्वभाव से ही अनेक व्याधियों का घर है। उससे विवेकपूर्वक असंग हो जाने पर चिरशान्ति तथा स्थायी प्रसन्नता मिल सकती है; कारण, कि असंगता का अनुभव होते ही सर्व वासनाओं का अन्त हो जाता है और निर्वासना आ जाने पर माना हुआ सीमित अहंभाव शेष नहीं रहता। उसके न रहने पर, अनन्त नित्य चिन्मय जीवन से अभिन्नता हो जाती है, जो मानव का चरम लक्ष्य है।

पुनः तुमको बहुत-बहुत प्यार !

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

❖ जो सदा के लिये नहीं है, वह अपने लिये नहीं है। जो सदैव नहीं है, सो अपना नहीं है और जो अपने में नहीं है, सो अपना नहीं है।

❖ जैसे, भोग का परिणाम मोह और आसक्ति है, वैसे ही योग का परिणाम बोध और प्रेम है।

7

जयपुर

16.8.54

सौभाग्यवती स्नेहमयी,

सप्रेम यथोचित तथा बहुत-बहुत मधुर स्नेह !

तुम्हारा भेजा हुआ पत्र यथासमय मिल गया। कुछ दिन पूर्व यहाँ आने पर तुम्हारा एक पत्र और मिला था, उसका उत्तर भी दे दिया था, मिला होगा।

आवश्यकता की पूर्ति तथा इच्छाओं की निवृत्ति हो जाने पर शरीर आदि किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती। उसका रहना, न रहना समान ही हो जाता है। इसी कारण विचारशील प्राणों के रहते हुए ही इच्छाओं की निवृत्ति और आवश्यकता की पूर्ति करके सब प्रकार से अचिन्त तथा अभय हो जाते हैं। इच्छाओं का अन्त करने के लिये विचारपूर्वक स्थूल, सूक्ष्म, कारण-तीनों शरीरों से असंग होना अनिवार्य है। शरीर से असंग होते ही इच्छाओं की निवृत्ति तथा आवश्यकता की पूर्ति स्वतः हो जाती है और फिर कुछ करना तथा पाना शेष नहीं रहता।

सभी प्रेमीजनों को यथोचित निवेदन करें।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

- ठहरी हुई बुद्धि में श्रुति का ज्ञान स्वतः अभिव्यक्त होता है। उसकी पाठशाला है "एकान्त" और पाठ है "मौन"।
- जो धर्मात्मा है, उसकी संसार आवश्यकता अनुभव करता है और उसे स्वयं संसार की आवश्यकता नहीं रहती।
- जिसको उत्पन्न हुई चीज की आवश्यकता नहीं रहती, उसे अनुत्पन्न हुआ जीवन मिल जाता है।

8

जयपुर

25.8.54

स्नेहमयी परम आस्तिक सौ॰ प्रिय पुत्री,

सदा प्रसन्न रहो !

मधुर स्नेह से हरा-भरा पत्र मिला। शरीर अपने स्वभावानुसार चाहे जैसा रहे, उसके बनने-बिगड़ने से किसी का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। उसे जब तक रहना है, जैसा रहना है, रहेगा। उसके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है। जहाँ तक हो सके, विवेकपूर्वक प्राणों के रहते हुए सर्व इच्छाओं का अन्त कर, अचिंत हो जाना चाहिए। अचिंतता ज्यों-ज्यों सबल तथा स्थायी होती जाती है, त्यों-त्यों आवश्यक शक्ति का विकास स्वतः होता जाता है। जिस काल में देहाभिमान गल जाता है, उसी काल में प्राणी दिव्य चिन्मय अमर जीवन से अभिन्न हो जाता है, और फिर कुछ भी करना तथा पाना शेष नहीं रहता।

अपने को शरीर कभी मत मानो; कारण, कि तुम्हारा निज स्वरूप तीनों शरीरों से अतीत है। शरीर तो केवल विश्वरूप भगवान् की सेवा के लिए मिला है। प्रियजनों को यथोचित निवेदन करना।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

❖ अपने आप आने वाले सुख-दुःख का शासन अपने पर मत होने दो।

❖ निर्बलताओं को मिटाने के लिए व्याकुलतापूर्वक प्रेम-पात्र से प्रार्थना करो।

9

जयपुर

6.9.54

सौभाग्यवती, स्नेहमयी, परम आस्तिक,

सप्रेम यथोचित तथा बहुत-बहुत मधुर स्नेह !

पत्र के स्वरूप में भेंट हुई। आपने ठीक ही लिखा है कि देखने वाले का प्रकाश दीखने वाली वस्तु में है, अर्थात् समस्त दृश्य से विमुख होने पर ही दृष्टा अपने आप में स्थित हो, अपनी महिमा को आप ही जानता है। दृष्टा सभी से अतीत होने पर भी सभी में विद्यमान है अर्थात् वही 'स्वरूप' है।

आपने लिखा है कि कल्पना स्थूल क्यों मालूम होती है? यह नियम है कि कल्पनाकर्त्ता अपनी कल्पना को ही अपने में अनुभव करता है। अतः कल्पना, उसकी अपेक्षा, जिसकी वह कल्पना है, स्थूल ही है। शब्द आकाश का ही गुण है, इस कारण शब्द और आकाश एक ही हैं। आपकी भाषा अटपटी हो, पर जो कुछ आपने लिखा, ठीक ही है।

राग का अन्त होते ही इन्द्रियाँ मन में और मन बुद्धि में और बुद्धि, जो उससे परे है, उसमें विलीन हो जाती है, इसके पश्चात् दृष्टा, दर्शन, दृश्य की त्रिपुटी मिट जाती है।

पुनः तुमको बहुत-बहुत स्नेह !

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

❖ जिसका कोई संकल्प नहीं है, वह प्रत्येक परिस्थिति में चिरशान्ति में वास करता है।

10

कोटरी, कोटा

10.9.54

सौभाग्यवती स्नेहमयी,

सप्रेम यथोचित तथा बहुत-बहुत मधुर स्नेह !

दृश्य की विमुखता का अर्थ है-विषयों से इन्द्रियों को विमुख करना। जब सर्व इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय से विमुख हो जाती हैं, तब इन्द्रियाँ मन में विलीन हो जाती हैं, और फिर मन बुद्धि में विलीन हो जाता है। मन के विलीन होते ही बुद्धि सम हो जाती है। बस, यही दृश्य से विमुख होना है। यह तभी सम्भव होगा, जब भोग-वासनाओं का अन्त हो जाये। भोग-वासनाओं का अन्त करने के लिये देह से अपने को अलग करना अनिवार्य है। जिस प्रकार इन्द्रियाँ विषयों को देखतीं तथा उनमें प्रवृत्त होती हैं, उसी प्रकार मन इन्द्रियों को देखता है तथा उनसे तद्रूप होता है, और बुद्धि मन को देखती है। किन्तु जो बुद्धि को देखता है, वह समस्त दृश्य से अतीत है। वही तुम्हारा निज स्वरूप है। उसी में अपने को विलीन कर देना है। बस, बेड़ा पार है।

कल्पनाओं से अपने को अलग अनुभव करना, कल्पनाओं के नाश का सुगम उपाय है। जिस प्रकार भुना हुआ दाना उपजता नहीं है, किन्तु उससे भूख दूर होती है, उसी प्रकार अपने को सर्व कल्पनाओं से अलग अनुभव करते ही निर्वासना आ जाती है और फिर शरीर-यात्रा को चलाने वाले संकल्प भुने हुए दानों के समान उत्पन्न होते हैं और आवश्यक कार्य पूरा हो जाने पर, विलीन हो जाते हैं। उन संकल्पों से कर्म, संस्कार नहीं बनता; कारण, कि वे संकल्प राग-रहित होते हैं। अथवा यों कहिये कि राग का अन्त होते ही वासना मिट जाती है, और आवश्यक संकल्प पूरे हो जाते हैं। वासना-रहित संकल्प बंधन का हेतु नहीं होता, केवल स्फुरण मात्र होता है।

अपने को तीनों शरीरों से अलग अनुभव करने पर, सब प्रकार के राग का अन्त हो जाता है और फिर निर्वासना आ जाती है। वासनाओं का अभाव होते ही त्रिपुटी का अभाव हो जाता है। विषयों की सत्यता व सुन्दरता का भान होना ही राग का स्वरूप है। विवेकरूपी सूर्य उदय होते ही रागरूपी अंधकार मिट जाता है और फिर सभी दोष निवृत्त हो जाते हैं। सीमित अहंभाव सदा के लिये मिट जाता है और फिर अपने में ही अपने प्रेमास्पद का अनुभव होता है। बस, यही परम् शान्ति है।

पुनः आपको बहुत-बहुत प्यार !

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

11

बरेली

15.9.56

मेरे निज स्वरूप परम प्रिय,

"है" का वास्तविक अर्थ है, जो सदैव-सर्वत्र सभी को नित्य प्राप्त है। उसी को "है" करके सम्बोधन किया है। उसी "है" के प्रकाश में, जो सदैव नहीं रहता, उसी को 'नहीं' के नाम से सम्बोधन किया है। पुनः तुम दोनों को बहुत-बहुत प्यार !

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

❖ योग का पूर्वपक्ष कर्त्तव्य है और उत्तरपक्ष योग है। प्रेम का पूर्व पक्ष पूजा है, उत्तर पक्ष प्रेम है।

मानव सेवा संघ
वृन्दावन (मथुरा)
16.5.57

सौभाग्यवती स्नेहमयी,

सप्रेम यथोचित मधुर स्नेह!

ता॰ 14.5.57 का लिखा हुआ पत्र मिला। सर्वसमर्थ प्रभु की अहैतुकी कृपा से साधन मास का कार्यक्रम विधिवत चल रहा है। साधन समारोह की सफलता साधकों की उपस्थिति में निहित है। अतः इस अवसर पर आप लोगों को अवश्य आना चाहिए। सत्संग का अवसर प्रभु की विशेष कृपा से ही प्राप्त होता है। सत्संग के बिना मानव-जीवन की सार्थकता ही सिद्ध नहीं होती, क्योंकि एक मात्र सत्संग ही साधन-निर्माण का सर्वोत्कृष्ट सुगम उपाय है।

प्रियजनों से सप्रेम यथोचित तथा बहुत-बहुत मधुर स्नेह निवेदन करना। तुमको बहुत-बहुत प्यार। प्रत्येक घटना में प्रभु की अनुपम लीला का अनुभव करो और सर्वदा निश्चिन्त तथा निर्भय रहने का स्वभाव बना लो।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,
शरणानन्द

- अगर हम केवल परमात्मा को अपना मान लें और सब प्रकार से उन्हीं के होकर रहें और उन्हीं के नाते, सबके प्रति सद्भाव रखें, तो यह निर्विवाद सत्य है कि हमारा 'उन्हीं' में नित्य वास होगा।
- योग के बिना सामर्थ्य और शान्ति नहीं मिलती, बोध के बिना अमरत्व प्राप्त नहीं होता और प्रेम के बिना रसरूप जीवन की अभिव्यक्ति नहीं होती।

13

मानव सेवा संघ

श्रीवृन्दावन

10.10.57

सौ॰ स्नेहमयी दुलारी,

प्रत्येक परिस्थिति प्रभु के मंगलमय विधान से निर्मित है। उसके सदुपयोग में ही प्राणी का विकास निहित है। अतः प्रत्येक वर्तमान कर्त्तव्य-कर्म को पवित्र भाव से प्रभु के नाते, करती रहो तथा कार्य के आदि और अन्त में शान्ति सुरक्षित रखो। यह नियम है कि ज्यों-ज्यों शान्ति सबल तथा स्थायी होती जाएगी, त्यों-त्यों आवश्यक सामर्थ्य की अभिव्यक्ति स्वतः होती जाएगी। अतः स्वाधीनता तथा प्रेम की प्राप्ति होगी। 'स्वाधीनता' दिव्य चिन्मय जीवन से अभिन्न करने में और 'प्रेम' अगाध-अनन्त रस प्रदान करने में समर्थ है। इस दृष्टि से सभी साधकों को वर्तमान कर्त्तव्य-कर्म द्वारा प्यारे प्रभु की पूजा करना अनिवार्य है।

शरीर से दूर रहने पर भी मेरी सद्भावना सदैव तुम्हारे साथ है। पुनः तुम दोनों को बहुत-बहुत प्यार।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

❖ जिसके जीवन में सुखभोग का प्रलोभन नहीं रहता, उसका दृश्य से सम्बन्ध टूट जाता है। फिर उसकी दृष्टि अपने उद्गम में विलीन हो जाती है। तब वह अपने में सन्तुष्ट होकर अविनाशी जीवन से अभिन्न होता है।

❖ जो बात ज्ञान के द्वारा सिद्ध है और विश्वास के द्वारा साध्य है, उसके लिये अभ्यास की अपेक्षा नहीं है।

14

वृन्दावन
2.11.57

सौभाग्यवती स्नेहमयी,

बहुत-बहुत प्यार!

ता॰ 28.10.57 का लिखा हुआ सरलता तथा स्नेह से हरा-भरा पत्र मिला। साधन मास के महोत्सव में सम्मिलित न हो सके, इसका दुःख मन से निकाल दो, क्योंकि प्रत्येक परिस्थिति प्रभु के मंगलमय विधान से निर्मित है। उसके सदुपयोग में ही प्राणी का हित निहित है। पर, इस रहस्य को कोई बिरले ही जान पाते हैं। परिस्थिति-परिवर्तन की अपेक्षा परिस्थिति के सदुपयोग का कहीं अधिक महत्त्व है। इतना ही नहीं, प्राणी परिस्थिति-परिवर्तन में पराधीन और उसके सदुपयोग में सर्वदा स्वाधीन है। इस दृष्टि से सर्वदा प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग में ही तत्पर रहना परम आवश्यक है। जहाँ रहो प्रसन्न रहो।

प्रत्येक वर्तमान कर्त्तव्य-कर्म द्वारा प्यारे प्रभु की पूजा करो और सब प्रकार से उन्हीं की होकर रहो। उनकी दिव्य-चिन्मय प्रीति को ही अपना जीवन जानो। यही मानव-जीवन की सार्थकता है। अपने जाने हुये असत् के त्याग में ही सत् का संग है। सत् के संग में ही साधन का निर्माण है। साधन-निर्माण में ही साधन-परायणता और साधन-परायणता में ही साधन-तत्त्व से अभिन्नता अर्थात् अपने साध्य में अगाध-अनन्त नित नव प्रियता की प्राप्ति निहित है। इस दृष्टि से प्रत्येक साधक प्रत्येक परिस्थिति में अपने जाने हुए असत् के त्याग द्वारा सत् का संग कर, साधन करने में सर्वदा स्वतन्त्र है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा पिता,
शरणानन्द

कोंच

24.2.58

सौभाग्यवती स्नेहमयी,

सप्रेम यथोचित तथा बहुत-बहुत मधुर स्नेह!

जिस प्रकार प्रत्येक बीज अपने स्वभाव के अनुरूप ही सत्ता पाता है, उसी प्रकार अपनी विद्यमान रुचि के अनुरूप ही संग का प्रभाव पड़ता है। सर्वांश में निर्मल हो जाने पर, किसी भी परिस्थिति का प्रभाव नहीं पड़ता। जिस प्रकार भुना हुआ बीज किसी भी भूमि में नहीं उपजता, उसी प्रकार सीमित अहंभाव का नाश हो जाने पर, गुण-दोष का प्रभाव नहीं होता। अहंभाव के रहते हुए ही संग का प्रभाव होता है। इसी कारण विचारशील अहंभाव रूपी बीज को विचारपूर्वक नाश कर देते हैं और फिर सभी विकारों से रहित निर्विकार जीवन से अभिन्नता प्राप्त कर लेते हैं। विवेकपूर्वक असंग हो जाओ अथवा सरल विश्वासपूर्वक शरणागत-यही सफलता की कुंजी है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

- अपने सुधार में ही सभी का सुधार निहित है।
- अकर्त्तव्य के त्याग में कर्त्तव्यपरायणता स्वतः सिद्ध है।
- वर्तमान का सदुपयोग ही विकास का मूल है।
- व्यर्थ-चिंतन के त्याग में ही सार्थक चिंतन निहित है।
- पराये कर्त्तव्य की स्मृति में ही अपने कर्त्तव्य की विस्मृति है।
- कर्त्तव्य की विस्मृति ही अकर्त्तव्य की जननी है।

मानव सेवा संघ आश्रम

वृन्दावन

22.11.58

सौभाग्यवती स्नेहमयी कर्त्तव्यनिष्ठ प्यारी बेटी,

सर्वदा शान्त तथा प्रसन्न रहो।

सत्संग में न आने का दुःख सत्संग की लालसा को सबल तथा स्थायी बनाता है। प्यारी बेटी, प्राकृतिक नियम के अनुसार न होने का दुःख, 'होने' में स्वतः बदल जाता है। अतः सत्संग की तीव्र लालसा असत् की कामनाओं को खाकर सत् से अभिन्न कर देती है। इस दृष्टि से तो सत्संग में न आने की वेदना भी हितकर ही है। अपने दुःख का कारण दूसरों को मान लेने से द्वेष की उत्पत्ति होती है। इस कारण क्रियाशील अपने दुःख का कारण किसी और को नहीं मानते। अपने दुःख का कारण किसी और को न मानने से सजगता आती है, जिसके आते ही संसार के स्वरूप का यथेष्ट बोध होता है।

उसके होते ही असंगता प्राप्त होती है, जो वस्तु, अवस्था परिस्थिति के अतीत के जीवन से अभिन्न कर देती है। प्यारी बेटी, कर्म-चिन्तन-स्थिति से अतीत का जीवन ही वास्तविक जीवन है। वास्तविक जीवन में आस्था होते ही देहाभिमान स्वतः ही गल जाता है। जिसके गलते ही निर्वासना, निर्भयता, समता, मुदिता आदि गुणों की अभिव्यक्ति स्वतः होती है। किन्तु विवेकीजन उन गुणों का भोग नहीं करते। तब उन्हें वास्तविक दिव्य-चिन्मय जीवन से एकता प्राप्त होती है। अतः उन्हें स्वाधीनता का साम्राज्य प्राप्त होता है। उस स्वाधीनता को समर्पित करने पर ही परम प्रेम की अभिव्यक्ति होती है, जिसके होते ही जीवन प्रभु के लिये उपयोगी सिद्ध होता है। प्रेमियों की दृष्टि में प्रेमास्पद से भिन्न किसी की सत्ता ही नहीं है। वे प्रत्येक घटना में अपने

प्रेमास्पद की अहैतुकी कृपा का दर्शन करते हुए सर्वदा शान्त तथा प्रसन्न रहते हैं। जो कुछ हो रहा है, वह अपने ही प्यारे के मन से हो रहा है। अतः वर्तमान कर्त्तव्य-कर्म द्वारा 'उनकी' पूजा करते हुए, उन्हीं की प्रीति होकर, उन्हें रस प्रदान करते रहो-यही जीवन की सफलता है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

17

मानव सेवा संघ

वृन्दावन

21.3.59

सौभाग्यवती स्नेहमयी दुलारी बेटी,

सर्वदा शान्त तथा प्रसन्न रहो।

आज यहाँ आने पर पत्र के स्वरुप भेंट हुई। शरीर अपने स्वभावनुसार अस्वस्थ चल रहा है, पर कोई चिंताजनक बात नहीं है। हाँ, उससे असंग होना ही परम आरोग्यता है, जो विवेक सिद्ध है। अनन्त की अहैतुकी कृपा से विवेक मानव मात्र को नित्य प्राप्त है। वर्तमान मानव जीवन के महत्त्व को जानो, उसका आदर करो। मानव-जीवन ही एक ऐसा अनुपम जीवन है, जो अपने लिये, जगत् के लिये, प्रभु के लिये उपयोगी सिद्ध होता है। पर, उसके लिये प्रत्येक मानव को सत्संग करना है। समस्त असाधन असत् के संग से ही उत्पन्न होते हैं। अतः सत्संग द्वारा सभी साधकों को बड़ी सुगमतापूर्वक साधनपरायणता प्राप्त होती है। यह निर्विवाद सत्य है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

कैम्प जोधपुर

7.9.59

सौभाग्यवती स्नेहमयी, स्वधर्मनिष्ठ,

सर्वदा शान्त तथा प्रसन्न रहो।

उत्पत्ति तथा विनाश का क्रम निरन्तर चल रहा है। उसी में प्रतीति मात्र भासती है, पर है नहीं। जिसके प्रकाश से समस्त दृश्य प्रकाशित हो रहा है, वास्तव में उसी की स्वतन्त्र सत्ता है, वही तत्त्ववेत्ताओं का निज स्वरूप है। विवेकीजन उसी से अभिन्न हो, कृतकृत्य होते हैं। पर-दुःख से दुःखी होना हृदय की कोमलता तथा करुणा है। करुणा दुःखी के दुःख को अवश्य हर लेती है और करुणित प्राणी के हृदय में भोग की रुचि शेष नहीं रहने देती। भोग की रुचि का नाश होते ही 'सहज योग' स्वतः प्राप्त होता है। जिसके होते ही चिर विश्राम की अभिव्यक्ति होती है। विश्राम सामर्थ्य का प्रतीक है। सामर्थ्य स्वाधीनता की जननी है। स्वाधीनता साधक को दिव्य-चिन्मय जीवन से अभिन्न कर देती है और फिर स्वतः प्रेम की जागृति होती है। प्रेम के प्रादुर्भाव में ही जीवन की पूर्णता निहित है।

पुनः बहुत-बहुत प्यार। मेरी सद्भावना सदैव तुम्हारे साथ है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

❖ अपने को सब ओर से हटाकर अपने में ही अपने प्रेमपात्र का अनुभव करना अनन्य भक्ति है।

❖ स्वधर्म पालन करने में आई हुई कठिनाइयों को प्रसन्नतापूर्वक सहन करना परम तप है।

19

भागलपुर

29.1.61

सौभाग्यवती स्नेहमयी साधननिष्ठ,

सप्रेम यथोचित तथा बहुत-बहुत मधुर स्नेह।

शरीर का रहना अथवा न रहना मंगलमय विधान के अधीन है। विधान सभी के लिये हितकर है। उसके आदर में ही प्राणी का विकास निहित है। प्रत्येक घटना में अनन्त की अनुपम लीला का दर्शन करना है और सब प्रकार से प्यारे प्रभु का होकर रहना है। निष्कामता से उदित परम शान्ति तथा असंगता से प्राप्त स्वाधीनता एवं श्रद्धा, विश्वासपूर्वक आत्मीयता से जागृत अगाध प्रियता में ही जीवन की पूर्णता है।

जहाँ रहो प्रसन्न रहो, जो करो ठीक करो। सभी प्रियजनों को यथोचित निवेदन करना। मेरी सद्भावना सदैव तुम्हारे साथ है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

20

सरदार शहर

6.5.61

सौभाग्यवती साधननिष्ठ स्नेहमयी पुत्री,

बहुत-बहुत प्यार। सर्वदा शान्त तथा प्रसन्न रहो।

संयोग-वियोग विधान के अधीन है। अपना अधिकार, जो हो रहा है, उसी में प्रसन्न रहने का है और प्रत्येक वर्तमान कर्तव्य द्वारा प्यारे प्रभु की पूजा करना है। प्रभु की मधुर स्मृति में ही जीवन की

पूर्णता है। प्रत्येक दशा में मधुर स्मृति होती रहे। निर्ममता, निष्कामता एवं आत्मीयता में ही अखण्ड स्मृति निहित है। जिसका कुछ नहीं है, जिसे कुछ नहीं चाहिए, उसी को प्यारे प्रभु की आत्मीयता प्राप्त होती है। आत्मीयता में ही अगाध प्रियता निहित है; कारण, कि जो अपने हैं, वे ही अपने को अत्यन्त प्रिय हैं। उनकी प्रियता ही उन्हें रस देती है। जिसे भोग-मोक्ष कुछ नहीं चाहिए, उसे ही प्रभु-प्रेम की प्राप्ति होती है, जो वास्तविक जीवन है।

मेरी सद्भावना सदैव तुम लोगों के साथ है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

21

बटाला

2.10.61

सौभाग्यवती साधननिष्ठ स्नेहमयी प्रिय पुत्री,

बहुत-बहुत प्यार। सर्वदा शान्त तथा प्रसन्न रहो।

संयोग-वियोग विधान के अधीन है। अपने सभी संकल्प सर्वसमर्थ प्रभु के समर्पण कर, सदा के लिये निर्भय तथा निश्चिंत हो जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त कुछ भी करना नहीं है। अर्थात् जिसका कोई संकल्प नहीं है, उसे कुछ भी करना शेष नहीं रहता। प्रभु के संकल्प में सभी संकल्प विलीन करना ही वास्तविक भजन है।जिसे कुछ नहीं चाहिए, जिसका अपना कुछ नहीं है, जिसने प्यारे प्रभु को अपना स्वीकार किया है, उसी को मुक्ति तथा भक्ति प्राप्त होती है।

मेरे विश्वास के अनुसार तुम मुक्त तथा भक्त हो; कारण, कि तुमने निर्ममता तथा निष्कामता एवं प्यारे प्रभु में आत्मीयता स्वीकार

की है। प्रत्येक घटना में प्यारे प्रभु की अनुपम लीला का दर्शन करो। सब प्रकार से उन्हीं के होकर रहो। उनकी मधुर स्मृति को ही अपना सर्वस्व जानो। मेरी सद्भावना सदैव तुम्हारे साथ है। निकटवर्ती प्रियजनों को प्यार निवेदन करना।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

22

पटना

7.12.61

सौभाग्यवती स्नेहमयी साधननिष्ठ दुलारी बेटी तथा प्रिय वत्स,

तुम दोनों को बहुत-बहुत प्यार।

सत्संग द्वारा साधन की अभिव्यक्ति तथा असाधन का नाश स्वतः हो जाता है। इस कारण सत्संग का बड़ा ही महत्त्व है। पर यह रहस्य वे ही जान पाते हैं, जिन्होंने मानव-जीवन के महत्त्व पर विचार किया है। जो बेचारे भूल कर वस्तु, अवस्था परिस्थितियों के महत्त्व में आबद्ध हो गये हैं, उन्हें सत्संग प्यारा नहीं लगता। सत्संग से जिस जीवन की उपलब्धि होती है, वह जीवन किसी भी अन्य प्रकार से नहीं मिलता। अपने-अपने जाने हुए असत् के त्याग से प्रत्येक मानव सत्संग प्राप्त कर सकता है। जाने हुए असत् का त्याग करते ही सभी उत्पन्न हुए दोष स्वतः ही नाश हो जाते हैं, और सत्संग होते ही निर्विकारता, परम शान्ति, स्वाधीनता एवं प्रेम की अभिव्यक्ति स्वतः होती है। जिस प्रकार सूर्य के उदय होते ही अन्धकार की निवृत्ति और प्रकाश की प्राप्ति स्वतः हो जाती है, उसी प्रकार सत्संग होते ही काम की निवृत्ति, जिज्ञासा की पूर्ति एवं प्रेम की प्राप्ति स्वतः हो जाती है, जो वास्तविक जीवन है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

23

पटना

21.3.62

सौभाग्यवती स्नेहमयी साधननिष्ठ प्रिय पुत्री,

बहुत-बहुत प्यार।

जो कुछ नहीं कर सकता, उसे कुछ भी नहीं करना है। जो नहीं करना चाहिए, उसके न करने पर, जो करना चाहिए, वह स्वतः होने लगता है। अर्थात् अकर्त्तव्य के त्याग में ही कर्त्तव्यपरायणता निहित है। जो कुछ मिला है, वह अपना नहीं है। यह अनुभव प्रत्येक मानव को करना अनिवार्य है। पर, जिससे मिला है, वह दाता सदैव अपना है। मानव प्रमादवश मिले हुए को अपना मान लेता है और दाता को भूल जाता है। यही मानव की भारी भूल है। जिसे इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि के द्वारा देखते हैं, वह अपना नहीं है।

जो सर्व का प्रकाशक तथा आश्रय है, वह अपना है। इस महामंत्र को अपनाते ही जगत् की ममता तथा कामना मिट जाती है, और प्यारे प्रभु में आत्मीयता हो जाती है, जो विकास का मूल है। ममता का नाश होते ही निर्विकारता और निष्कामता से परम शान्ति तथा आत्मीयता से नित-नव प्रियता स्वतः जागृत होती है, अर्थात् आत्मीयता में ही अखंड स्मृति निहित है। बस, यही सच्चा भजन है।

अपने सभी संकल्प सर्वसमर्थ प्रभु के समर्पण कर, निश्चिन्त तथा निर्भय हो जाएँ। यही सफलता की कुंजी है।

निकटवर्ती प्रियजनों को सप्रेम यथोचित तथा बहुत-बहुत प्यार। मेरी सद्भावना सदैव तुम लोगों के साथ है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

24

गीता भवन

19.4.62

सौ॰ स्नेहमयी साधननिष्ठ प्रिय पुत्री तथा परम प्रिय,

तुम दोनों को बहुत-बहुत प्यार।

तुम स्वयं अनुभव करो कि शरीर आदि जो कुछ मिला है, वह अपना नहीं है, अपितु किसी की देन है। जब यह अनुभव हो जायेगा, तब अपने आप निष्कामता प्राप्त होगी। कारण यह है कि ममता का नाश होने पर ही कामनाओं का नाश होता है। मेरा कुछ नहीं है, ऐसा अनुभव करने से निर्विकारता अर्थात् लोभ-मोह आदि सभी विकार नाश हो जाते हैं। परन्तु 'मैं निर्विकार हूँ'-ऐसा अभिमान नहीं रहना चाहिए; कारण, कि निर्विकारता भी किसी की देन है, अपनी उपार्जित वस्तु नहीं है। कामनाओं का नाश होने पर परमशान्ति स्वतः प्राप्त होती है। शान्ति में रमण न करने से असंगता का बोध हो जाता है। जिसके होते ही सभी बन्धन नाश हो जाते हैं, अर्थात् स्वाधीनता प्राप्त होती है। परन्तु वह भी उसकी देन है, जिसने कि निर्विकारता तथा परम शान्ति प्रदान की थी। जो साधक निर्विकारता, शान्ति आदि दिव्य गुणों का भोग नहीं करता, वह अचाह होता है, और उसी के जीवन में परम प्रेम की अभिव्यक्ति होती हे। मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, केवल प्रभु ही मेरे हैं-ऐसा जानने तथा मानने से स्वतः निर्विकारता, परमशान्ति, स्वाधीनता एवं परम प्रेम की प्राप्ति होती है, जो वास्तविक जीवन है। जिसे भोग तथा मोक्ष नहीं चाहिए, उसी को प्रेम प्राप्त होता है। प्रेम की प्राप्ति में ही जीवन की पूर्णता है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा

शरणानन्द

25

वृन्दावन

31.5.62

सौभाग्यवती स्नेहमयी साधननिष्ठ,

सप्रेम यथोचित तथा बहुत-बहुत मधुर स्नेह।

विवेकपूर्वक ममता-कामना का त्याग कर असंग होना है। असंगता में ही वास्तविक जीवन निहित है। इस कारण शीघ्र अति शीघ्र असंग होन के लिए अथक प्रयत्नशील रहो। अर्थात् आस्था, श्रद्धा, विश्वासपूर्वक शरणागत हो जाओ। यही सफलता की कुंजी है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

26

जयपुर

6.8.63

सौभाग्यवती स्नेहमयी साधननिष्ठ व प्रियवर,

तुम दोनों को बहुत-बहुत प्यार।

वास्तव में तो विचारपूर्वक असंग होने से ही मानव अनन्त से अभिन्न होकर, कृतकृत्य होता है, जो एक मात्र सत्संग से ही साध्य है।

प्रत्येक घटना कुछ-न-कुछ अर्थ रखती है। विचारशील अर्थ को

अपनाकर अपने कर्त्तव्य को भलीभाँति जानते हैं। संयोग में वियोग और सुख में दुःख स्वभाव से ही निहित हैं। दुःख तथा वियोग का प्रभाव अपनाने पर नित्ययोग-नित्यानन्द स्वतः प्राप्त होता है। जहाँ रहो प्रसन्न रहो, जो करो ठीक करो। पुनः तुम दोनों को बहुत-बहुत प्यार।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

सद्भावना सहित,

तुम्हारा पिता,

शरणानन्द

27

जबलपुर

22.12.63

स्नेहमयी साधननिष्ठ प्रिय पुत्री,

यद्यपि प्राकृतिक नियमानुसार संयोग काल से ही वियोग और जन्म से ही मृत्यु की घड़ियाँ आरम्भ हो जाती हैं, परन्तु इन्द्रिय दृष्टि से जीवन ही प्रतीत होता रहता है। सर्व समर्थ प्रभु अहैतुकी कृपा से मृतक प्राणी को आत्म-शान्ति तथा मोह-पीड़ित प्रियजनों को विवेक का बल प्रदान करें, जिससे वे आये हुए दुःख का सदुपयोग करने में समर्थ हो जाएँ। बड़े दुःख की बात तो यह है कि परम प्रिय..... जी का विचार शेष जीवन सत्संग तथा साधन में व्यतीत करने का था। पर, यह मनोरथ पूरा न हो सका। उनके इस आकस्मिक निधन से परिवार तथा समाज की बड़ी ही क्षति हुई। पर, क्या किया जाए? उसमें किसी का बस नहीं चलता। इस दुर्घटना से यह प्रेरणा मिलती है कि शीघ्रातिशीघ्र प्राणों के रहते हुए ही विचारपूर्वक निर्ममता तथा निष्कामता एवं असंगता को अपना कर देहातीत अमर जीवन से अभिन्न हो जाना चाहिए। प्यारी बेटी! अब तुम्हें अपने पति के कल्याणार्थ देहातीत जीवन में प्रवेश पाना है। तुम साधननिष्ठ होकर अपना और उनका

कल्याण कर सकती हो; कारण, कि जो शरीर शेष है, वह उन्हीं का आधा शरीर है। अतः तुम्हारे साधननिष्ठ होने में ही सभी का हित निहित है। तुम विचारशील हो, तुम्हें सजगतापूर्वक आये हुए दुःख का सदुपयोग करना चाहिए।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

28

मानव सेवा संघ

वृन्दावन

25.1.64

स्नेहमयी साधननिष्ठ पुत्री,

सत्संग मानव का स्व-धर्म है, अर्थात् अपने द्वारा करने की बात है। तुम स्वयं जानती हो कि मिले हुए शरीर पर किसी का कोई अधिकार नहीं है। कब क्या हो जाए-इसका कोई पता नहीं। इस कारण प्राणों के रहते ही शरीर में से अहं-बुद्धि अर्थात् यह अनुभव करो कि शरीर "मैं" नहीं हूँ और समस्त जगत् में से मम-बुद्धि अर्थात् जो कुछ दिखलाई देता है, मेरा नहीं है। इस निजज्ञान का आदर करना ही सत्संग है। सत्संग से निर्विकारता, चिरशान्ति और स्वाधीनता के साम्राज्य में प्रवेश होता है।

तुम देहातीत जीवन में बास करो, जो अचाह होकर अहंकृति रहित होन से अथवा शरणागत होने से सम्भव है। जो कुछ हो रहा है, उससे विमुख होकर, जो सदैव है, उससे अभिन्न हो जाओ। यही शरणागति है। तुम्हें अपने लिए कुछ भी नहीं करना है। तुम किसी भी काल में देह नहीं हो। आए हुए सुख-दुःख तुम्हारे खेलने के मैदान हैं। तुम उनसे सर्वदा अतीत हो। सुख-दुःख तुम्हें बाँध नहीं सकते। सुख

उदारता के लिए और दुःख त्याग का पाठ पढ़ाने के लिए आता है। ममता और कामना को त्याग, आये हुए दुःख का सदुपयोग करो। यह बात करने की स्वाधीनता तुम्हें प्राप्त है। दुःख में अधीर होने की बात नहीं है, अपितु सजग होना है। राग रहित होने के लिए ही मानव-जीवन मिला है। अतः इस अनिवार्य कार्य को पूरा कर, योगवित् तथा तत्त्व वित् हो जाओ। निरंतर सत्य की खोज में लगी रहो। सुख-दुःख को फुटबाल बनाकर ठुकरा दो। जो तुम्हारा अपना है, वह सदैव तुम्हारे साथ है। तुम सब ओर से विमुख हो जाओ। अपने में ही 'उसे' पाओगी।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

29

इटावा

21.2.64

स्नेहमयी साधननिष्ठ पुत्री,

वियोग की वेदना किस में है? इस पर विचार करो। जब तक मानव अपने को देह नहीं मान लेता, तब तक न तो संयोग की दासता ही उत्पन्न होती है और न ही वियोग का भय।

अपने को देह मान लेना, निजज्ञान का अनादर है। तुम शान्त होकर देखो कि तुम्हें देह का ज्ञान है, अर्थात् देह अलग है तथा उस पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। जगत् के रचयिता ने देह संसार रूपी वाटिका की सेवा के लिए दी थी। पर, मानव भूल से उसे सुख की सामग्री मान लेता है। अपने को देह मानकर ही वस्तुओं और व्यक्तियों से ममता उत्पन्न होती है, जिसके होते ही अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। प्यारी बेटी! तुमने देह होकर जिस देह को अपनाया था, वह आज नहीं है। इसी का दुःख है। पर क्या, जो देह आज तुम्हारे पास है, वह क्या

रहेगी? रहना होगा नहीं। पर, जो शरीर चला गया, उसके लिए इस शरीर के द्वारा-जो तुम्हारे पास मौजूद है-क्या करोगे? क्या रोने से उस प्राणी का हित होगा? कदापि नहीं। यह शरीर भी उसी का है, जिसका वह शरीर था। तुम इस शरीर से सम्बन्ध तोड़ दो, अर्थात् निर्मम तथा निष्काम हो जाओ। मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए।

शरीर के रहते हुए भी शरीर से असंग होना है, जो मूक सत्संग से ही सम्भव है। शान्त होकर उसी की खोज करो, जो सदैव है। अपने को उसी के समर्पण कर दो। इस शरीर के द्वारा किया हुआ साधन उस प्राणी के लिये भी मंगलमय होगा; कारण, कि इस हाथ को जिसके हाथ में दिया था, उसी का यह हाथ है, तुम्हारा नहीं। अतः शान्त होकर उसकी ओर देखो, जो तुम्हें देख रहा है। तुम्हारा दृष्टा ही तुम्हारा प्रीतम है। तुम अपने को इन्द्रिय दृष्टि तथा बुद्धि दृष्टि से अलग कर लो, और अपने प्रकाशक की प्रीति बन जाओ। बस, बेड़ा पार है।

सहज भाव से चलते-फिरते, सोते-जागते की हुई प्रार्थना ही वास्तविक प्रार्थना है। तुम्हारे प्रियतम तुम्हें देहातीत जीवन की ओर ले जाना चाहते हैं, इसलिए उन्होंने उस देह का लोप कर लिया, जिसे तुम अपना मानती थी, जिस भेष में वे आये थे, वह भेष आज सामने नहीं है, पर, 'वे' तो हैं ही। उनसे तो तुम्हारा वियोग हो नहीं सकता, अपितु नित्य योग ही है। यह जीवित शरीर भी वास्तव में मृतक ही है। तुम अपने को कभी शरीर मत समझो। तुम अनन्त की प्रीति हो। शरीर को संयम का मन्दिर बना दो। जब तुम शरीर से विमुख होकर 'उनकी' ओर देखोगी, जो तुम्हारे हैं, तब अपने आप सब कुछ हो जायेगा, अर्थात् तुम योग-बोध और प्रेम से अभिन्न हो जाओगी। यह निर्विवाद सत्य है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

30

गाजीपुर

22.3.64

स्नेहमयी साधननिष्ठ प्रिय पुत्री,

सर्वदा शान्त रहने का स्वभाव बनाओ-यही मेरी सद्भावना है। कारण, कि शान्त रहना ही आवश्यक कार्य की जननी है। इतना ही नहीं, शान्त रहने पर अपनी भूल का ज्ञान होता है। भूल का ज्ञान होने पर ही मानव भूल-रहित होता है। भूल-रहित होने पर ही देह-गेह आदि की ममता तथा कामना नाश होती है और फिर तत्त्व की जिज्ञासा की जागृति मात्र से ही भूल से उत्पन्न हुए समस्त विकार नाश हो जाते हैं और फिर अपने आप निर्विकार जीवन से अभिन्नता होती है। अतः प्रत्येक मानव को भूलरहित होना चाहिए। जो एक मात्र अपनी जानकारी से ही सम्भव है। शान्त रहने से निज ज्ञान का प्रकाश स्वतः स्पष्ट होता है, जिसके होने पर ही मानव को अपने लक्ष्य एवं दायित्व का बोध हो जाता है। दायित्व पूरा करने पर ही लक्ष्य की प्राप्ति होती है। यह प्रभु का मंगलमय विधान है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

31

राँची

23.6.64

स्नेहमयी साधननिष्ठ पुत्री,

तुम्हारे सुनने से, ऐसा मालूम होता है कि तुम्हारा मन संसार से हटकर सर्वेश्वर में लग गया है। यह तुम पर उनकी बड़ी ही कृपा है।

मानव-जीवन का यही परम फल है, जो तुम्हें प्राप्त है। सब ओर से विमुख होकर, प्रभु के प्रेम में अपने को गला देना ही वास्तव में जीवन है। तुम धन्य हो। तुम्हारी जननी धन्य है, जिसने तुम्हारी जैसी साधननिष्ठ बालिका को जन्म दिया। तन कहीं पर रहे, पर, तुम सर्वेश्वर की प्रीति में ही डूबी रहो। तुम्हारे साधननिष्ठ होने से स्वर्गीय आत्मा का भी कल्याण होगा-ऐसा मेरा विश्वास है; कारण, कि तुम्हारा शरीर तुम्हारा नहीं है, अपितु उन्हीं का है, जिनके समर्पण किया गया था। इससे तुम्हारा जीवन उपयोगी हो गया। सर्व समर्थ प्रभु अपनी अहैतुकी कृपा से तुम्हें साधननिष्ठ बनाएँ।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,
शरणानन्द

32

वृन्दावन
20.8.64

स्नेहमयी साधननिष्ठ पुत्री,

जिसके वियोग में दुःखी हो, वह नहीं मिलेगा। पर, जो सदैव है, सभी का है, सर्वत्र है, अद्वितीय है, उससे तुम्हारी अभिन्नता अवश्य हो जायेगी। तुम 'यह' को जानती हो और 'वे' तुम्हें जानते हैं। जब तुम 'यह' से विमुख हो जाओगी, अर्थात् 'यह' की ममता व कामना छोड़ दोगी, तब 'वे' तुम्हारे अपने, अर्थात् सर्वेश्वर अपनी प्रीति प्रदान करेंगे, योग एवं बोध प्रदान करेंगे।

दुःख के प्रभाव का अर्थ है-सुख के प्रलोभन से रहित हो जाना। जब मानव सुख के प्रलोभन से रहित हो जाता है, तब बड़ी ही सुगमता पूर्वक ममता एवं कामना का त्याग, निर्विकारता तथा चिरशान्ति पाता है।

किन्तु, उसमें भी रमण नहीं करता, तब जीवन-मुक्ति का आनन्द पाता है, और जब मुक्ति से भी संतुष्ट नहीं होता, तब सर्वेश्वर की भक्ति

पाता है। शान्ति-मुक्ति और भक्ति में ही जीवन है। शरीरादि वस्तुओं से सम्बन्ध जोड़ लेना भूल है। 'यह' करके जो कुछ दिखाई देता है, उससे तुम्हारा नित्य सम्बन्ध नहीं है। अतः समस्त दृश्य से विमुख होकर, अपने में ही सर्वेश्वर को पाकर कृतकृत्य हो जाना है।

यह जो कुछ दिखाई देता है, वह सर्वेश्वर की लीला है। उनकी लीला को देख, उनका प्रेम जगना चाहिए। यही सफलता की कुंजी है। आश्रम परिवार की ओर से सप्रेम यथोचित तथा बहुत-बहुत प्यार।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,
शरणानन्द

33

वृन्दावन
8.1.65

स्नेहमयी साधननिष्ठ प्रिय पुत्री,

बहुत-बहुत प्यार। सर्वदा शान्त तथा प्रसन्न रहो।

पत्र के स्वरूप में भेंट हुई। समाचार विदित हुआ। प्रत्येक दशा में मानसिक शान्ति सुरक्षित रखते हुए प्राण-प्यारे लालन 'सर्वेश्वर' को ही लाड़ लड़ाना है। उसी का होकर रहना है, उससे भिन्न और को नहीं मानना है। उसकी महिमा अपार है। वह सब कुछ कर सकता है। उसका प्यार तुम्हारा जीवन हो-यही मेरी सद्भावना है।

जहाँ रहो प्रसन्न रहो, जो करो ठीक करो। प्रत्येक घटना में सर्वेश्वर की लीला का दर्शन करना है और उन्हीं की प्रीति होकर रहना है। बस, यही मानव-जीवन की सफलता है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,
शरणानन्द

34

वृन्दावन

20.2.65

स्नेहमयी साधननिष्ठ प्रिय पुत्री,

अपने सभी संकल्प सर्वेश्वर को समर्पित कर, निश्चिन्त तथा निर्भय हो जाओ और निरन्तर उन्हीं को लाड़ लड़ाती रहो। उनका प्रेम ही तुम्हारा जीवन है। प्रत्येक कर्म उन्हीं की पूजा है। वे तुम्हारे हैं और तुम उनकी हो। तुम उनकी ही प्रीति हो और वे तुम्हारे सर्वस्व हैं।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

35

मानव सेवा संघ

वृन्दावन

10.11.66

स्नेहमयी परम भागवत साधननिष्ठ,

सप्रेम हरिस्मरण तथा बहुत-बहुत मधुर स्नेह।

पत्र के स्वरूप में भेंट हुई। समाचार विदित हुआ। इस संमय पीर कामड़िया न आ सकूँगा, इसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ। सच तो यह है कि कब कहाँ रहना है, इसे तो 'वे' ही जानें, जो सभी के अपने हैं, जिन्हें तुमने पुत्र भाव से स्वीकार किया है। उनकी जैसी मौज होगी, वैसा ही होगा। अपने सभी संकल्प उन्हीं के समर्पित करना है, और उन्हीं को लाड़ लड़ाना है, उन्हीं का होकर रहना है।

जहाँ रहो प्रसन्न रहो, जो करो ठीक करो। अपने लाला को लाड़ लड़ाती रहो। उसकी प्रीति ही तुम्हारा जीवन हो जाए-यही मेरी सद्भावना है।

सभी आश्रमवासियों की ओर से सप्रेम हरिस्मरण।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

36

मानव सेवा संघ आश्रम

वृन्दावन

9.2.67

स्नेहमयी परम भागवत दुलारी बेटी,

प्रत्येक माँ अपने दुलारे बालक को लाड़ लड़ाना जानती है। माँ के हृदय में निरन्तर अपने लाड़ले लाल को रस देने की उत्कट लालसा रहती ही है। यही दिनचर्या है। शरीर के सहयोग के बिना अपने ही द्वारा अपने दुलारे को प्यार करती रहो। अब तुम सोचोगी कि अपने द्वारा प्यार करने का अर्थ क्या है? अपने को प्यारा लगे, यही अपने द्वारा प्यार देना है। प्यार देने वाले का अपना मन नहीं रहता, उसकी सभी कामनाएँ नाश हो जाती हैं।

यहाँ तक कि उसका अपना कोई अस्तित्व प्यार से भिन्न कुछ नहीं रहता। तुम्हारे लाला में अनन्त ऐश्वर्य, माधुर्य एवं अनन्त सौंदर्य है। पर, माँ के प्यार के लिये अपने और माँ के बीच अपने ऐश्वर्य का उपयोग नहीं करते। तभी तो सर्व समर्थ होते हुए भी माँ से दूध, दही माखन माँगते हैं, ढिठाई करते हैं। यह उनकी दिव्य लीला सदैव तुम्हारे सामने होती रहे-यही तुम्हारी उत्कृष्ट लालसा रहनी चाहिए। यही वास्तविक प्रार्थना है। जबसे सोकर जगो और सो न जाओ, तब तक अपने दुलारे लाला का काम करती हुई, उसको सुख देने की सोचती रहो। इससे बढ़कर और कोई पूजा नहीं है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

37

गीता भवन

ऋषिकेश

3.5.67

स्नेहमयी साधननिष्ठ भक्तिमति प्रिय पुत्री,

सर्वदा प्राण प्यारे प्रभु को लाड़ लड़ाती रहो।

शरीर और संसार से तुम्हारा नित्य सम्बन्ध नहीं है। नित्य सम्बन्ध एकमात्र प्यारे सर्वू से ही है। अतः शरीर के प्रभाव से अपने को मुक्त करलो, अर्थात् जब साधक में शरीर का प्रभाव नहीं रहता, तब वह अपने आप मोह रहित होता है। मोह रहित होते ही सब प्रकार से अभय हो जाता है। यही शरीर की महिमा से रहित होना है। सर्वू के नाते, शरीर द्वारा संसार रूपी वाटिका की सेवा करो। इससे अपने को सदैव असंग रखो।

संसार से तुम्हारा मूल्य अधिक है। तुम बिना संसार के सदैव रह सकती हो। अपने लिये संसार की आवश्यकता नहीं है-इस सत्य को स्वीकार करो। अपने से भी अधिक अपने दुलारे प्राण-प्यारे प्रभु को मानो। यह तब ही सिद्ध होगा, जब तुम निरन्तर सर्वू के प्यार में डूबी रहोगी।

सर्वू की महिमा का कोई पारापार नहीं है। वह छोटा सा बालक इतना महान है कि सम्पूर्ण सृष्टि उसके एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंशमात्र में है। तुम्हारा प्यार पाने के लिये अनन्त प्रभु स्वयम् ही तुम्हारा बालक बना है। इस कारण उसका प्रेम ही तुम्हारा जीवन बन जाना चाहिए। प्रेम से प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहता है, कभी भी घटता नहीं है।

तुम्हारी दृष्टि में कोई और न रह जाय। सर्वू का प्रेम ही तुम्हारा जीवन है। प्रेमी को भोग और मोक्ष कुछ नहीं चाहिए। अपने प्रेमास्पद को रस देना ही प्रेमी का सहज स्वभाव है। प्रेम से ही प्रेमास्पद को रस मिलता है। अपनत्व से ही प्रेम की जागृति होती है। अपनत्व सजीव बनाने के लिये, सब कुछ प्रेमास्पद को समर्पण करना होता है। सब कुछ सर्वू का है। सर्वू अपना है-इसमें अविचल आस्था करो। अपने प्यारे सर्वू को बहुत-बहुत प्यार निवेदन करना। वहाँ रहो, यहाँ रहो और कहीं भी रहो, प्रसन्न रहो। जो करो ठीक करो।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा पिता,

शरणानन्द

38

राँची

15.3.67

स्नेहमयी, भक्तिमति प्रिय पुत्री,

सर्वदा अपने लाला को लाड़ लड़ाती रहो।

तुम्हारा पत्र मुझे कुछ दिन पूर्व मिला था। पर, मेरी ही भूल से वह वाराणसी में रह गया। सम्भव है कि वृन्दावन जाने पर वह पत्र पुनः मुझे मिल जायेगा। तुम अपने पत्र में पता लिखती नहीं हो। मुझे पता याद रहता नहीं, अनुमान से लिखा रहा हूँ। तुम्हारा लाला चाहेगा, तो पत्र मिल जायेगा। तुम निरन्तर अपने लाला को रस देने के लिये प्यार करती रहो। तुम्हारे लिये सब कुछ वही है। यदि तुम्हारी नजर और किसी पर नहीं जाती है, तो यह अच्छी बात है। तुम्हारा प्यार पाने के लिये तुम्हारा लाला नन्हा सा है। पर, उसकी महिमा का कोई वारापार नहीं है। प्रभु अपने भक्त के लिये भक्त की मर्जी के अनुसार सब कुछ करते हैं, परन्तु उन्हें तो निरन्तर प्यार चाहिए। तुम्हारी दृष्टि में और

कोई न रह जाए।

तुम किसी और की नहीं हो और न कोई तुम्हारा है। तुम्हारा समस्त जीवन लाला का प्यार हो जाए-यही मेरी सद्भावना है। तुम्हारे सभी संकल्प लाला के प्रेम में विलीन हो जाएँ। तुम्हारा जीवन लाला के प्रेम से भिन्न कुछ न रह जाए। तुम्हारा लाला सदैव तुम्हारी गोद में खेलता रहे, तुम सदैव उसे लाड़ लड़ाती रहो। वह नन्हा सा है, पर सब कुछ कर सकता है। इस पर सब बातें तो मिलकर हो सकती हैं। तुम दोनों को बहुत-बहुत प्यार।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा पिता,

शरणानन्द

39

भरतपुर

18.4.67

स्नेहमयी साधननिष्ठ,

सप्रेम हरि स्मरण।

तुम्हारा ता॰ 13.4.67 का लिखा हुआ पत्र मुझे यहाँ आने पर मिला। समाचार विदित हुआ। सर्वेश्वर की महिमा का वारापार नहीं है। पर, तुम्हारा तो वह अपना लाला है, और तुम्हें अत्यन्त प्रिय है। इतना ही नहीं, उसका प्यार ही तुम्हारा जीवन है। तुम स्वयं उसकी महिमा को स्वीकार करो। दूसरों के द्वारा अपने सर्वू की महिमा सुनना चाहती हो, उसकी पूर्ति तो सर्वू स्वयं कर सकता है। किसी और की महिमा जब नहीं रहती, तब अपने आप उस महा महिम की महिमा से जीवन भर जाता है। अपना चाहे जैसा हो, अपना होने से ही प्यारा लगता है। प्यार से ही सर्वू को रस मिलता है। उसने रस पाने के लिये

ही तुम्हें अपनी माँ स्वीकार किया है।

अतः तुम्हारा हृदय सर्वू के प्यार से भरा रहे, और सर्वू सदैव तुम्हारी गोद में खेलता रहे-यही मेरी सद्भावना है। सर्वू जैसा राखे, वैसा रहो। वह सब कुछ जानता है, सब कुछ कर सकता है। तुम्हारे जीवन में सर्वू से भिन्न और कोई न रह जाए, रोम-रोम सर्वू के प्यार से भर जाए। वह तभी होगा, जब तुम कुछ भी नहीं चाहोगी और सर्वू को प्यार देती रहोगी। प्यार देना तुम्हारा सहज स्वभाव है। प्यार देने से बढ़ता है, घटता नहीं। दिन-रात सर्वू के प्यार में डूबी रहो। जो कुछ हो रहा है, उसमें अपने लाला की ही लीला का अनुभव करो। अनेक रूपों में तुम्हारा सर्वू ही है, अंतः प्यार सब को देना है। किसी को भी बुरा नहीं समझना है, अपितु सर्वू के नाते, सभी को आदर तथा प्यार देना है।

इसके अतिरिक्त, कुछ नहीं करना है। जहाँ रहो, प्रसन्न रहो; जो करो ठीक करो। नित-नव उत्साहपूर्वक सर्वू को लाड़ लड़ाती रहो। यही इसी मानव-जीवन का फल है। निश्चित कार्यक्रम के अनुसार 20.4.67 को गीता भवन स्वर्गाश्रम जाने का विचार है। होगा क्या, प्रभु जाने। पुनः तुम्हें व तुम्हारे सर्वू को बहुत-बहुत प्यार।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

- ❖ अपने अधिकार का त्याग तथा दूसरों के अधिकार की रक्षा में ही सफलता निहित है।
- ❖ जिसकी अपनी कोई कामना नहीं रहती, उसी की माँग सभी को होती है।
- ❖ चाह रहित की चाह सभी को होती है। चाह युक्त की चाह किसी को नहीं रहती।

40

नैनीताल

6.9.48

मेरी निज स्वरूप विचारशीला प्रिय पुत्री,

सप्रेम यथोचित अभिवादन।

तुम्हारा पत्र यथा समय मिला गया। समाचार ज्ञात हुआ। प्रेमी हो जाने में ही प्राणी का अस्तित्व रह सकता है। क्योंकि उनके भक्त का नाश नहीं होता। परन्तु प्रेमी बनने के लिये विशेष ध्यान इस बात का रखना है कि प्राणी अपने को शरीर से विचारपूर्वक असंग कर ले, तभी अपने को प्रेमी बना सकेगा। शरीर के साथ घुल-मिल जाने पर अनेक प्रकार की वासनाओं का स्वतः जन्म हो जाता है, जो प्राणी को प्रेमी नहीं होने देतीं। निर्वासना के बिना, प्रेमी होना सर्वदा असम्भव है। वास्तविक प्रेमी वही हो सकता है, जो भोग-मोक्ष दोनों ही से मुक्त हो जावे। शरीर से असंग हो जाने पर, सभी बंधन टूट जाते हैं-यह सभी विचारशीलों का अनुभव है। अतः अपने को शरीर कभी मत समझो। शरीर तो केवल 'उनके' विश्व की सेवा का साधन है, अर्थात् इस परिवर्तनशील वाटिका का माली है। 'उनकी' आज्ञा तथा प्रसन्नार्थ शरीर द्वारा सेवा करते रहना ही शरीर का सदुपयोग है। शरीर के व्यापार में जीवन-बुद्धि रखना प्रमाद है। प्रत्येक कार्य के अन्त में शरीर को अपने से उसी प्रकार अलग कर लो, जिस प्रकार किसी यन्त्र से कार्य लेने पर, यन्त्र को अपने से अलग कर देते हैं। ज्यों-ज्यों असंगता की सद्भावना दृढ़ तथा स्थाई होती जायेगी, त्यों-त्यों निर्वासना अपने आप आती जायेगी। निर्वासना आने पर निर्मोहता और निर्मोहता प्राप्त होने पर प्रीति की गंगा स्वतः लहरायेगी। प्रीति वह अलौकिक प्रवाह है कि जिस का आरम्भ तो होता है, किन्तु अन्त नहीं। प्यारी बेटी! प्रेमी हो जाना ही प्राणी का परम पुरुषार्थ है। हमें प्रेमी तो होना है, किन्तु 'उनका' जिन्हें हम नहीं जानते, परन्तु 'वे' हमें अवश्य जानते हैं।

क्योकि हम सीमित और 'वे' असीम हैं। सीमित असीम में विलीन हो सकता है। सीमित असीम को विषय नहीं कर सकता। परन्तु असीम सीमित को सब कुछ कर सकता है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

41

वृन्दावन

26.7.63

स्नेहमयी साधननिष्ठ प्रिय पुत्री,

बहुत-बहुत प्यार। सर्वदा शान्त तथा प्रसन्न रहो।

करने में सावधान, होने में प्रसन्न रहने वाली नीति ही वास्तविक नीति है। अतः प्राप्त परिस्थिति का पूजा भाव से सदुपयोग करते हुए मानसिक शान्ति सुरक्षित रखो। शान्ति आवश्यक सामर्थ्य की जननी है। इस कारण कार्य के आदि और अन्त में शान्त रहना अनिवार्य है। तुम जिसकी हो, वह सब कुछ जानता है और समर्थ है, तुम्हारा अपना है। उसी के नाते, आवश्यक कार्य करते हुए, उन्हीं की प्रीति होकर रहो। निश्चिंतता, निर्भयता एवं प्रियता में ही सर्वतोमुखी विकास निहित है। निकटवर्ती प्रियजनों को सप्रेम यथोचित तथा बालक-बालिकाओं को बहुत-बहुत प्यार। जहाँ रहो प्रसन्न रहो, जो करो ठीक करो। पुनः तुम्हें बहुत-बहुत प्यार।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

❖ प्राप्त बल के सदुपयोग में ही निर्बलताओं का अन्त है।

42

नैनीताल

27.2.68

मेरी निज स्वरूप चि॰ पुत्री,

सर्वदा प्रसन्न रहो।

देखो बेटी! रोग-पीड़ित प्राणियों की सेवा करने के लिये उदारता तथा धीरज एवं प्यार-तीनों ही की आवश्यकता है। परन्तु धीरज सबसे अधिक होना चाहिए। तुम्हारा कोमल हृदय दुःखियों को देख, घबरा जाता है। मोह को त्याग, उत्तरोत्तर धर्मप्रियता बढ़ती रहनी चाहिए। मानव-जीवन में चैन कहाँ? यह तो साधक-धर्म है, अर्थात् प्रसन्नतापूर्वक कठिनाइयों को सहन करना है।

-: सन्त वाणी :-

अपने कर्त्तव्य से दूसरों के अधिकार को सुरक्षित रखना धर्म है। अर्थात् सेवा के लिये सभी को अपना समझो, किन्तु अपनी प्रसन्नता के लिये केवल सर्व समर्थ भगवान् को ही अपना समझो। ऐसी भावना दृढ़ होने पर एक विचित्र अनुपम बल आ जाता है, जिस से प्राणी कर्त्तव्य परायण हो कर, अपने में ही अपने परम प्रेमास्पद भगवान् का अनुभव कर लेता है। ऐसा मेरा विश्वास है।

मन के दूषित हो जाने पर ही प्राणी दुःखी होता है। पराये-दोष न देखने से, किसी का बुरा न चाहने से, संसार को असत्य समझने से, प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करने से मन शुद्ध हो जाता है। मन के शुद्ध होने पर व्यर्थ-चिन्तन मिट जाता है। व्यर्थ-चिन्तन मिटते ही सार्थक-चिन्तन, अर्थात् स्मरण-चिन्तन-ध्यान स्वतः होने लगता है। अतः मन को शुद्ध करने के लिये प्राणी को सतत् प्रयत्नशील रहना

चाहिये। इस समस्या में हार स्वीकार करना भूल है; क्योंकि मन को शुद्ध करने के लिये प्राणी सर्वदा स्वतन्त्र है। परतंत्रता केवल उपभोग में है, उपार्जन में नहीं।

वर्तमान गतिशील क्षणभंगुर जीवन को सत्य समझना प्रमाद है, जिसे मिटाना चाहिये। प्रत्येक कार्य भगवत् नाते, योग्यता, ईमानदारी तथा परिश्रमपूर्वक करते रहना चाहिये और कार्य के अंत में सहज भाव से चलते-फिरते, उठते-बैठते हृदय से प्रेमपात्र को पुकारना चाहिये। यही सच्चा भजन है। सभी गृहनिवासियों को सप्रेम यथायोग्य कह देना।

मानव की माँग तथा आश्रम बनाने की सद्भावना शरीर को रखने की प्रेरणा करती है। 'उनके' सिखाने के बड़े विचित्र ढंग हैं। वे मुझे आजकल यही पढ़ा रहे हैं कि अन्याय तथा अपमान प्रसन्नतापूर्वक सहते रहो; किसी से भी न्याय तथा प्रेम की आशा न करो। तुम मेरे दुःख से दुःखी न होना, क्योंकि तुम्हारे दुःखी होने से मेरा दुःख बढ़ जायेगा।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

43

नैनीताल

26.9.48

मेरी निज स्वरूप पुत्री,

प्राणी सुख आने पर प्रमादी और दुःख आने पर भयभीत हो जाता है। अतः जो प्राणी सुख आने पर विवेकी बना रहता है और दुःख आने पर अभय बना रहता है, वही सुख-दुःख का सदुपयोग कर सकता है।

मूल सिद्धांत समझ लेने पर कर्त्तव्य का ज्ञान स्वतः हो जाता है। भय तथा अभिमान समझ को ढक लेता है। अतएव मन से भय तथा

अभिमान निकाल दो, तब समझ शुद्ध हो जायेगी और फिर तुम्हें स्वयं नित्य प्रकाश मिलेगा, जिससे अकर्त्तव्य और कर्त्तव्य का वास्तविक बोध हो जायेगा।

हमें वह नहीं करना है, जो नहीं कर सकते। तो फिर कर्त्तव्य पालन में परतन्त्रता और लक्ष्य की प्राप्ति में असफलता कैसी?

रोग तथा रोगियों की सेवा से शरीर के स्वरूप को समझ लो। इतना ही नहीं, यह भी भली-भाँति जान लो कि मुझे शरीर से असंग होना है। सच्चा सेवक वही हो सकता है, जो अपने को शरीर नहीं समझता। सेवक होने पर ऐश्वर्य तथा माधुर्य स्वतः प्राप्त होता है, जो वास्तव में भगवान् का स्वभाव है।

भगवत् स्वभाव का प्राकट्य होने पर, 'उनसे' अभिन्नता स्वतः हो जाती है। इस दृष्टि से सेवक बड़ी सुगमता से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

निस्सन्देह इस वर्ष परम उदार तथा स्नेहमयी को बड़ी ही प्रतिकूलताओं को सहन करना पड़ रहा है। सर्वसमर्थ भगवान् उनके मन में स्थिरता तथा बुद्धि में विवेक एवं हृदय में निर्भयता प्रदान करें, जिससे वे प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग कर, उससे असंग हो जाएँ और अपने में ही अपने प्रियतम का अनुभव कर, कृतार्थ हों।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

- ❖ उन सभी संकल्पों का अन्त कर दो, जिन को जन-समाज के सामने निर्भयता पूर्वक प्रकाशित नहीं कर सकते।
- ❖ अविवेक के नाश में ही अकर्त्तव्य का अन्त है।
- ❖ अकर्त्तव्य का नाश और कर्त्तव्यपरायणता युगपद हैं।

44

नैनीताल

10.9.48

मेरी निज स्वरूप परम आस्तिक परम प्रिय पुत्री,

सर्वदा प्रसन्न रहो।

तुम्हारा ता॰ 3 का लिखा हुआ पत्र यथा समय मिल गया था। किन्तु उसी दिन एक पत्र लिख चुका था। इस कारण तुरन्त दूसरा पत्र लिखना उचित नहीं समझा।

आलस्य को त्याग, आवश्यक कार्य के लिये सतत् प्रयत्नशील रहना तो उचित है; किन्तु किसी भी कार्य से भयभीत होना भूल है। प्राणी का कर्त्तव्य वही है, जिसे वह कर सकता है। जिसके करने में परतंत्र हो, उसका करना कभी आवश्यक नहीं है। परन्तु यह बात बड़ी सावधानी से देखना चाहिए कि कहीं आलस्य के कारण तो परतंत्रता का बहाना नहीं करते? अपने को पूरा लगा देने पर सफलता तथा निश्चिन्तता स्वयं आ जाती है। प्रयत्नशील जीवन के प्राणी में व्यर्थ चिन्तन तथा भय के लिये कोई स्थान नहीं है।

देखो बेटी! मानव की उत्कृष्टता यही है कि उसका जीवन विधान बन जावे, अर्थात् वह भविष्य के प्राणियों के लिये पथ प्रदर्शक हो जावे। वह तभी सम्भव है, जब प्राणी का मन सुख-दुःख से मुक्त हो। सुख-दुःख में आबद्ध मन विवेक अर्थात् समझ का आदर नहीं कर पाता; जानते हुए भी, न जानने के समान ही बेसमझी करता है। मेरी भोली बेटी! तुझे मानवता की परीक्षा में उत्तीर्ण होना है। अतः आए हुए सुख-दुःख का सदुपयोग करते हुए, उससे असंग होकर, विवेकशील बनकर, मानव-जीवन की समस्याओं को हल कर लो। यही परम पुरुषार्थ है। प्राप्त परिस्थितियों का स्वागत करते हुए, अपने को सदैव उससे सबल बनाओ। अभी कुछ दिन यहीं रहने का विचार है। उतरने

पर कहाँ जाना होगा, 'वही' जाने, जिनकी कृपा का भरोसा है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

45

जयपुर

16.12.41

मेरी लाड़ली प्रिय पुत्री,

तुम्हारा पत्र मिला, समाचार ज्ञात हुआ। यह जानकर कि मेरे प्रिय का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, दुःख हुआ। इस समय रात्रि का 1 बज रहा है।

आज चिर-परिचित सिर की पीड़ा का दौरा हो गया है। काँग्रेस अधिवेशन की Subject Committee में गया था। इस कारण से शारीरिक श्रम कुछ अधिक हो गया । सच तो यह है कि अब यह शरीर किसी की सेवा के योग्य नहीं रहा।

तुमने लिखा है कि मैंने स्वास्थ्य के विषय में कुछ नहीं लिखा। क्या लिखूँ? शरीर अधिक विश्वास की वस्तु तो है नहीं। उस पर इस अभागे द्वारा किसी का हित नहीं हुआ। हाँ, प्रियजनों को इसके दुःख से दुःख अवश्य है। प्यारी बेटी! तुम इस संसार रूपी नाट्यशाला में Good Actor बन कर रहो। जो कार्य सामने उपस्थित हो, उसे भगवत् नाते, करते हुये निरन्तर भगवत्-चिन्तन करती रहो।

सभी गृहनिवासियों से सप्रेम यथोचित अभिवादन कहना।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

46

गीता भवन

ऋषिकेश

18.5.62

स्नेहमयी साधनिष्ठ प्रिय पुत्री,

बहुत-बहुत प्यार।

तुम्हारा 14.05.62 का लिखा हुआ पत्र मिला। समाचार विदित हुआ कि दोनों बालक परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये-यह जानकर हर्ष हुआ। तुम्हारे प्रश्न पत्र अधिक अच्छे नहीं हुए, इसकी तुम लेशमात्र चिन्ता न करो। विचारशील मानव कर्त्तव्य मात्र में ही अपना अधिकार मानते हैं, फल में नहीं। तुम्हारे सामने वृद्धों तथा बालकों की सेवा का प्रश्न है। उसी के लिये सामर्थ्य चाहिये। आवश्यक वस्तु, योग्यता तथा सामर्थ्य सेवक को बिना ही माँगे, मिलती है। यह प्रभु का मंगलमय विधान है। सच्चे सेवक के जीवन में पर-पीड़ा के अतिरिक्त उसकी कोई पीड़ा नहीं होती। अर्थात् उसका जीवन दुखियों को देख कर, करुणित होता है और सुखियों को देख, प्रसन्न रहता है। करुणा सुख-भोग की रुचि को खा लेती है और प्रसन्नता साधक को निष्कामता प्रदान करती है। भोग की रुचि के नाश में ही नित्य योग और निष्कामता में ही परम शान्ति निहित है, जो विकास का मूल है। इस दृष्टि से तुम्हें अपने लिए कुछ भी नहीं करना है। केवल प्रभु के नाते, प्रियजनों की सेवा करना है। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि प्रियजनों का वियोग होने पर भी बेचारा मानव मोहजनित सम्बन्ध का त्याग नहीं करता। तुम्हें तथा बालकों को छोड़कर कलकत्ता जाना क्या अर्थ रखता है? पर, क्या किया जाए? मोह की महिमा बड़ी ही प्रबल है। तुम धीरज रखो। जब सभी दरवाजे बन्द होते हैं, तब कोई खुल भी जाता है। प्रतीक्षा करो 'उसकी' अहैतुकी कृपा की। बड़ी वीरतापूर्वक आई हुई परिस्थिति का सदुपयोग

करना है, अधीर नहीं होना है, हार नहीं मानना है। तुम्हारा रक्षक सदैव तुम्हारे साथ है। तुम्हें सुख-दुःख के द्वन्द्व से ऊपर उठना है। प्यारी बेटी! वर्तमान कर्त्तव्य-कर्म को पूजा भाव से करती रहो, सफलता अनिवार्य है। निकटवर्ती प्रियजनों तथा बालकों को बहुत-बहुत प्यार निवेदन करना। मेरी सद्भावना तुम्हारे साथ है। पुनः तुम्हें बहुत-बहुत प्यार।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

47

सरदारशहर

27.9.67

स्नेहमयी साधननिष्ठ लाडली बेटी,

सप्रेम हरिस्मरण तथा बहुत-बहुत प्यार।

तुम्हारा पत्र मिला, समाचार विदित हुआ। लीलामय परीक्षा नहीं लेते हैं, वे तो सब कुछ जानते हैं। तुम्हारा कोमल हृदय प्रतिकूलता से भयभीत हो गया है। प्यारी बेटी, तुम्हारे जीवन में अधीर होने के लिए कोई स्थान नहीं है; कारण, कि तुम्हारा करके कुछ है नहीं और तुम्हें कुछ चाहिये भी नहीं। तुम्हारे तो केवल प्यारे प्रभु ही अपने हैं और उनकी प्रियता ही तुम्हारा जीवन है। प्राप्त परिस्थिति के रूप में प्यारे की पूजा करती रहो। आत्मीयता से जागृत अखण्ड स्मृति होती रहे। प्रीति की भूख बढ़ती रहे और अनेक घटनाओं के रूप में उनकी लीला देखती रहो। तुम्हारा यह अन्तिम जीवन है। तुम्हें अब जन्म नहीं लेना है। सुख का प्रलोभन मिटाने के लिए, दुःख पर दुःख आ रहा है। उससे डरो मत। अपितु दुःख के प्रभाव को अपनाकर अपने को सर्वांश में सुख के प्रलोभन से रहित कर लो। देखो मुन्नी! तुम्हारा नित्य सम्बन्ध तथा आत्मीयता जिससे है, उसी की होकर रहो। यह सारा खेल

जिस खिलाड़ी का है, वह तुम्हारा अपना प्यारा है। उसे मत भूलो। उससे उसका प्यार माँगो और कह दो, "हे निष्ठुर! तुम मुझे अपना प्यार दे दो और अपनी सृष्टि की सेवा करा लो!" तुम्हारा जीवन सुख-भोग के लिये नहीं है। इस वास्तविकता में अविचल आस्था करो। तुम अनन्त की प्रीति हो, सृष्टि की सेवा हो। यह तुम्हारा निज स्वरूप है। तुम किसी भी काल में देह नहीं हो। तुम्हारा कुछ नहीं है। जिसका सब कुछ है, वह तुम्हारा अपना है। 'वह' तुम्हें निरन्तर देख रहा है और तुम्हारे ही द्वारा तुम्हारी ममता को मिटाने के लिये खेल रहा है। तुम सदैव सभी घटनाओं में अपने चितचोर को देखती रहो और कभी-कभी कह दिया करो, "मैं किसी और की नहीं हूँ और कोई मेरा नहीं है। तुम्हीं मेरे अपने हो। जो खेल करोगे, वही देखूँगी और तुम्हारी प्रीति बनकर रहूँगी। मेरी यह माँग तुम्हें पूरी करनी ही होगी, वास्तविक माँग की पूर्ति होती है। यह अनन्त का मंगलमय विधान है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

48

गीता भवन

7.5.59

सौभाग्यवती, स्नेहमयी कर्त्तव्यनिष्ठ लाड़ली बेटी,

बहुत-बहुत प्यार।

सरलता तथा स्नेह से हरा-भरा पत्र मिला। संयोग-वियोग विधान के अधीन है। प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग ही विकास का मूल है। वर्त्तमान कर्त्तव्य-कर्म ही वास्तविक पूजा है। प्रियजनों के संकल्प में अपने संकल्पों का विलय करना ही पारस्परिक स्नेह को सुरक्षित रखना है। मानव सेवा संघ की नीति के अनुसार प्रत्येक घर आश्रम है। सभी के

अधिकारों की रक्षा करती रहो। ऐसा करने से जहाँ रहोगी, वहीं मानव सेवा संघ का आश्रम हो जाएगा। 'मानव सेवा संघ' मानव मात्र का अपना संघ है। कोई मानव भले ही उसे अपना न माने, किन्तु संघ तो सभी को अपना मानता है। इसी नाते, 'मानव सेवा संघ' मानव मात्र का अपना संघ है। अब आवश्यकता इस बात की है कि संघ की नीति के अनुसार मानव-परिवार का निर्माण किया जाए। यदि प्रत्येक परिवार में एक-एक व्यक्ति भी संघ की नीति के अनुसार रहने लगे, तो निस्सन्देह वह परिवार मानव-परिवार हो जायेगा। आज हम मानव जीवन के महत्त्व को भूले हैं। उसकी स्मृति का प्रतीक 'मानव सेवा संघ' है। कर्त्तव्य पराणयता द्वारा मानव जगत् के लिये और असंगता द्वारा मानव अपने लिये एवं आत्मीयतापूर्वक मानव प्रभु के लिये उपयोगी सिद्ध होता है। वास्तविकता तो यह है कि मानव को जगत् और जगतपति से कुछ भी नहीं लेना है। जगत् को उदारता, अर्थात् करुणा और प्रसन्नता और जगत्पति को प्रियता प्रदान करना ही मानव का अपना जीवन है।

अतः जहाँ रहो, प्रसन्न रहो। जो करो, ठीक करो। तुम्हारे द्वारा सभी के अधिकार सुरक्षित रहें और तुम्हारे मन में अपने अधिकार की गंध भी न रहे, तभी तुम सोई हुई मानवता को जगा सकती हो। 'मानवता' सेवा, त्याग तथा प्रेम की प्रतीक है। जो किसी से सुख की आशा नहीं करता, वही सेवा कर सकता है। जिसने अपने दुःख का कारण किसी और को नहीं माना, उसी के हृदय में प्रीति की गंगा लहराती है। यही संघ की निर्मल नीति है। अर्थात् किसी से सुख की आशा मत करो और अपने दुःख का कारण किसी और को मत मानो। जिसने इस नीति को अपनाया, उसका बेड़ा पार हुआ। सभी प्रियजनों को सप्रेम यथोचित।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

उदयपुर

22.5.45

मेरी निज स्वरूप प्रिय पुत्री तथा स्वधर्मनिष्ठ अन्य महानुभाव,

सप्रेम यथा-योग्य।

पत्र के स्वरूप में दर्शन मिला। उत्तर में देर हुई, क्षमा कीजिए। स्वास्थ्य जितना बिगड़ गया था, उससे कुछ अच्छा है। किन्तु सन्तोषजनक नहीं है।

इस शरीर से भी कहीं अधिक दुःखी प्राणी उपस्थित हैं। उनकी अव्यवस्था देखकर, इस शरीर को व्यवस्थापूर्वक रखने की रुचि उत्पन्न नहीं होती। यद्यपि यह केवल भावावेश ही है। इस चेष्टा से किसी दुःखी का भला तो होता नहीं। परन्तु अभी इस हृदय में यह निर्बलता उपस्थित है।

देखिये, कब निकलती है। एक रोग-ग्रसित भक्त महिला की चिकित्सा के लिये उज्जैन से उदयपुर आया था। उन बिचारी को डाक्टरों ने टी.बी. घोषित कर ही दी है। उनके इलाज की व्यवस्था एक मित्र डाक्टर ने कर दी है। सफलता भगवान् की कृपा पर निर्भर है।

जितनी सुविधायें आवश्यकता की दृष्टि से होनी चाहिये, नहीं हैं। परन्तु उन महिला की अर्थहीन दशा के कारण जो कुछ हो रहा है, आशा से अधिक है। यहाँ से 24 तारीख को गंगोत्री यात्रा के लिये जाना होगा। अतः अब दो मास तक पत्र-व्यवहार नहीं करना चाहिये।

प्रत्येक प्राणी का जीवन अनन्त ऐश्वर्य तथा माधुर्य सम्पन्न भगवान् की साया में है। परन्तु फिर भी प्राणी दीन तथा दुःखी है। इस समस्या पर विचार करने से यही ज्ञात होता है कि प्राणी अपने को मिले हुये सीमित तथा परिवर्तनशील ऐश्वर्य तथा माधुर्य में आबद्ध कर, अनन्त ऐश्वर्य तथा माधुर्य से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेता है एवं मिले हुये

ऐश्वर्य तथा माधुर्य का दुरुपयोग करता है। इन्हीं दो कारणों से सर्वसमर्थ की साया में रहकर भी बेचारा प्राणी दीन तथा दुःखी है।

यदि प्राणी मिले हुये धन तथा बल एवं योग्यता आदि भिन्न भिन्न प्रकार की शक्तियों का सदुपयोग करता रहे, अर्थात् उनको दुःखियों की सेवा में लगाता रहे, तो शक्तियाँ उत्तरोत्तर स्वयं बढ़ती रहती हैं। इतना ही नहीं, अन्त में प्राणी अनन्त शक्ति से अभिन्न हो जाता है।

परन्तु जब प्राणी मिले हुए धन एवं बल तथा योग्यता आदि शक्तियों को केवल अपने भोग में ही लगाता है एवं दूसरों को, जो उससे शक्तिहीन हैं, दुःखी करता है, तो मिली हुई शक्तियाँ छिन जाती हैं। अन्त में वह प्राणी जड़ता को प्राप्त होता है।

मानव-जीवन में भोग केवल भोग की असारता जानने के लिये है। भोग जीवन नहीं है। भोग की असारता का यथार्थ ज्ञान होने पर, भोग से असंग होने की शक्ति स्वतः आ जाती है।

भोग से असंग होते ही नित्य योग स्वतः हो जाता है, जो वास्तव में मानव की माँग है। क्योंकि प्रत्येक मानव नित्य जीवन और नित्य रस की अभिलाषा रखता है। अभिलाषा उसकी होती है, जिससे जातीय एकता और मानी भिन्नता हो और इच्छा उसी की होती है, जिससे मानी हुई एकता हो और जातीय भिन्नता हो।

इसी कारण इच्छाओं की निवृत्ति और अभिलाषा की पूर्ति होती है। अतः प्रत्येक मानव स्वतंत्रतापूर्वक नित्य जीवन एवं नित्य रस को प्राप्त कर सकता है। अर्थात् अपनी दीनता तथा दुःख को मिटा सकता है।

बेचारा मानव दीन उसी समय तक है, जब तक अपने को परिवर्तनशील सौन्दर्य में आबद्ध रखता है तथा अपने से अधिक दीन दुःखियों के काम नहीं आता।

जिस काल में मानव विचारपूर्वक अपने को सीमित सौन्दर्य से विमुख कर लेता है और अपने से अधिक दुःखियों के काम आने लगता

है, बस, उसी काल में अनन्त सौन्दर्य तथा आनन्द उसे स्वतः अपना लेता है।

निम्नलिखित प्रार्थना प्रत्येक प्राणी को सोते तथा उठते एवं प्रत्येक कार्य के आदि तथा अन्त में करनी चाहिये –

प्रार्थना : मेरे नाथ! आप अपनी, सुधामयी, सर्वसमर्थ, पतित-पावनी, अहैतुकी कृपा से, दुःखी प्राणियों के हृदय में, त्याग का बल और सुखी प्राणियों के हृदय में, सेवा का बल प्रदान करें, जिससे वे, सुख-दुःख के बन्धन से मुक्त हों आपके, पवित्र प्रेम का, आस्वादन कर, कृत्यकृत्य हो जायँ।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

50

टंकी हाऊस

18.6.48

मेरी निज स्वरूप पुत्री

जब-जब स्वर्गीय आत्मीयजन का स्मरण आये, तब-तब दृढ़तापूर्वक यही निश्चिय करो कि "अब तुम मेरे नहीं हो। तुम जगत्-जननी की अहैतुकी कृपा से नवीन योनि धारण कर, अपने लक्ष्य को पूरा करो। भगवान् तुम्हारा कल्याण करें"। देखो बेटी! मोहयुक्त प्रीति से न तो तुम्हारा हित है, न स्वर्गीय का। मोह त्याग करने पर ही, दोनों का हित सम्भव है। अतः उसके हित के लिये प्रतिदिन कम से कम 108 माला जप किया करो। अधिक जितना भी हो जावे। 108 माला जप करने में लगभग 2 घण्टे का समय लगेगा। यदि समय की कमी हो, तो उसे 2-3 बार में पूरा कर देना चाहिये।

तुम्हारे मन में इस बात का गहरा दुःख होता होगा कि वह बार-बार खाने की चीजें माँगता था और रोग के कारण आप लोग नहीं दे सकते थे। यह दशा उसकी मेरे सामने लखनऊ में थी। इस दुःख को मिटाने का उपाय यही है कि जिन चीजों को वह माँगता था, उनको बनाकर, गरीबों के छोटे-छोटे बच्चों को खिला दो।

दूसरी विचार करने की बात यह है कि यदि उसी के प्रारब्ध में वे वस्तुयें होतीं, तो उसको ऐसा भयंकर रोग क्यों होता? प्रत्येक प्राणी अपना-अपना भोग लेकर आता है। इसलिए विचारशील चिन्ता नहीं करते।

उसका हित इसी में है कि तुम उसे अपना न समझो और तुम्हारा हित इसी में है कि तुम विचारपूर्वक मोह का अन्त कर दो।

संसार रूपी नाट्यशाला में जो अभिनय (पार्ट) खेलने को मिला है, उसे न्यायपूर्वक पूरा करो। अभिनय को सत्य समझना भूल है। एक दिन था कि वह जैसी वस्तु तुम्हारी गोद में नहीं थी और आज भी नहीं है। देखो, जो वस्तु आदि और अन्त में नहीं होती, केवल मध्य में होती है, उसे विचारशील स्वप्नवत् समझते हैं। मोह रूपी निद्रा से उठो, जागृत हो जाओ। विवक रूपी सूर्य से हृदय का अंधकार मिटाओ। उसमें अनुराग की गंगा बहाओ।

सबसे अधिक महत्त्व की वस्तु समय है। मोहवश उसका दुरुपयोग न करो। यदि वेदना से प्रीति है, तो परम प्रेमास्पद के लिये क्यों नहीं व्याकुल होती? जो तुम्हारा नित्य साथी है। संसार की वस्तुएँ चाहे किसी स्वरूप में क्यों न हों, वे तुम्हारी साथी नहीं हैं। वे तो इस क्षणभंगुर विकारयुक्त शरीर की साथी हैं।

तुम शरीर नहीं हो। शरीर रूपी यन्त्र तो तुमको केवल प्रेमपात्र के नाते, विश्व-सेवा के लिये मिला है। यदि तुम उस शरीर को मोह रूपी अग्नि में जलाओगी, तो फिर प्रेमपात्र की आज्ञा का पालन किसके द्वारा करोगी?

हम शरीरधारिओं को जो, जो खेल मिला है, उस लीलामय की प्रसन्नता के लिये वह, वह खेल खेलो। खेल 'खेल' है, जीवन नहीं। प्राणी का जीवन केवल 'उनकी' प्रीति है। देखो! संतान के द्वारा भला, किसे चैन मिला है? महाराजा दशरथ को प्राण देना पड़ा। नंद-यशोदा को मीन की भाँति व्याकुलता सहनी पड़ी। तो हम साधारण प्राणियों की बात ही क्या है।

जो हो चुका है, उसके लिये चिन्ता न करो। जो समय व्यर्थ चिन्ता में बिताती हो, वह समय 'उनके' चिन्तन में बिताओ। सुख-दुःख मन का धर्म है। जो मन 'उनके' श्री चरणों में लग जाता है, वह मन सदा के लिये सुख-दुःख से छूट जाता है।

अतः प्रमाद को त्याग, सावधान हो जाओ और प्रत्येक स्वाँस का सदुपयोग करो। जब तक आपका हृदय दुःखी है, क्या आपका यह बालक प्रसन्न हो सकता है?

सच तो यह है कि हृदय की बात हृदय तक स्वयं पहुँच जाती है-ऐसा मेरा विश्वास है। आशा है कि आपका हृदय अवश्य शान्त होगा।

बाबा! शरीर चौकी पर भले ही पडा रहे, परन्तु मन परम मनोहर श्याम सुन्दर के श्री चरणों में लगा दो। यदि हृदय में 'उनके' न मिलने की वेदना बढ़ जायेगी, तो शरीर की पीड़ा अवश्य मिट जायेगी; क्योंकि दो वेदनायें एक साथ नहीं रहतीं। जिसके हृदय में 'उनके' वियोग की अग्नि प्रज्ज्वलित है, उसके हृदय के अन्य सभी दुःख भस्मीभूत हो जाते हैं-ऐसा मेरा विश्वास है। तुम्हारा हृदय चारों ओर मृत्यु का दृश्य देख, भयभीत है।

बेटी! यह तो बताओ कि जन्म होते ही, मृत्यु आरम्भ नहीं हो जाती? प्रत्येक वस्तु निरन्तर काल रूप अग्नि में जल रही है। विवेकी की दृष्टि में तो केवल मृत्यु का ज्ञान और अमरत्व की माँग है। अर्थात्

मृत्यु से अमरत्व की ओर जाना ही प्राणी का परम पुरुषार्थ है।

संयोग की दासता और वियोग के भय से सभी पीड़ित हैं। इस समस्या का हल करना ही मानव-जीवन का उद्देश्य है।

अतः मोहजनित बन्धन को त्याग, वियोग के भय से मुक्त हो जाओ। शरीर से सेवा, मन से 'उनका' स्मरण करती रहो। वे तुम्हारी सभी समस्याएँ हल कर देंगे। उनके सिखाने के अनेक ढंग हैं। तुम प्रत्येक घटना में 'उन्हीं' का चमत्कार देखो। कहीं सुख-दुःख के जाल में फँस कर, उस खिलाड़ी को भूल न जाना। यह जो कुछ हो रहा है, 'उनका' खेल है। हम सब साथियों को उनके साथ खेलना है। जब 'वे' हमें सब प्रकार से अपना पायेंगे, तुम सच मानो कि, फिर 'वे' सदैव हम लोगों के ही होकर रहेंगे।

आज वे हम लोगो को ही नाच नचा लें, एक दिन हम सब मिलकर उनको भी नाच नचायेंगे। उन्हें भी हम लोगों का स्मरण चिन्तन करना होगा। यह निर्विवाद सिद्ध है। हाँ! हम लोग उनके न हो कर, किसी और के हो गए। तब तो किसी भी प्रकार न मिलेंगे।

देखो! जो 'उनके' ही होकर रहते हैं, उन्हे वे अवश्य अपनाते हैं, रूठने पर मनाते हैं, सो जाने पर जगाते हैं, बिना बुलाये आते हैं; क्योंकि वे परम उदार हैं; क्योंकि वे ऋणी नहीं रहते। उनको दी हुई वस्तु सदैव बढ़ती रहती है। तो फिर तुम लोगों की प्रीति क्यों न बढ़ेगी? अवश्य बढ़ेगी। तुम सच मानो, 'वे' तुम लोगों को अवश्य प्रेम करेंगे, क्योंकि प्रेम करना केवल वही जानते हैं।

तुम अपने को उनके प्रेम का अधिकारी समझो; क्योंकि वे ही हम लोगों के नित्य साथी हैं। हम लोग अपने निजी सम्बन्धी को भूल, माने हुये सम्बन्धियों में फँस जाते हैं, जो वास्तव में परम भूल है। उस भूल को मिटाने के लिये ही प्रत्येक संयोग 'वियोग' में बदल जाता है। अतः संयोग काल में ही, वियोग का अनुभव करना चाहिए। ऐसा करने

से हमें अपने निजी सम्बन्धी का बोध होगा, जिससे हम सदैव उनकी नित्य लीला, नित्य रस, नित्य प्यार का आस्वादन करेंगे, जो वास्तव में हम लोगों का जीवन है। इस परिवर्तनशील-जीवन को 'जीवन' समझना भूल है। यह तो वास्तविक जीवन का साधनमात्र है। अतः हृदय से मृत्यु का भय मिटा दो और उसमें विचार का दीपक जला दो। पुनः सभी को बहुत-बहुत प्यार।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

51

अलीगढ

1.4.65

स्नेहमयी साधननिष्ठ प्रिय पुत्री,

बहुत-बहुत प्यार। सर्वदा शान्त तथा प्रसन्न रहो।

मंगलमय विधान से कर्त्तव्यपालन के लिये सामर्थ्य स्वतः प्राप्त होती है। अपने पर दायित्व इतना है कि प्राप्त का सदुपयोग करते रहें, अर्थात् दुरुपयोग न करें। कल फोन द्वारा तुम्हारी दीदी से बातचीत की थी। उन्होंने रोग, निवृत्ति के लिये उपचार बन्द कर दिया है। केवल भगवत चरणामृत पीती हैं और शान्त तथा प्रसन्न हैं। प्रभु-प्रेम की माँग ही उनकी भूख है। उसी के लिये व्याकुल रहती हैं।

प्यारी बेटी! प्रत्येक कर्त्तव्यकर्म द्वारा अपने दुलारे की पूजा करती रहो और प्रत्येक घटना में उन्हीं की लीला देखो। सब प्रकार से उन्हीं की होकर रहो। उनकी प्रियता ही तुम्हारा जीवन है, जो एक मात्र आस्था, श्रद्धा, विश्वासपूर्वक आत्मीयता से साध्य है। प्रत्येक दशा में मानसिक शान्ति सुरक्षित रखो। अपने सभी संकल्प सर्व समर्थ प्रभु के

चरणों में समर्पण कर दो। पूज्या अम्मा जी की आदरपूर्वक सेवा करती रहो। तुम्हारे रचयिता ने तुम्हें सेवा, त्याग, प्रेम के लिये ही बनाया है। उनके इस संकल्प में अपने संकल्प विलीन कर दो। निश्चिंतता, निर्भयता एवं प्रियता ही तुम्हारा जीवन हो। जहाँ रहो, प्रसन्न रहो। जो करो, ठीक करो। पुनः तुम्हें बहुत-बहुत प्यार।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

52

करनाल

6.8.67

स्नेहमयी कर्त्तव्यनिष्ठ भक्तमति लाडली बेटी,

सप्रेम हरि स्मरण।

पत्र के रूप में भेंट हुई। प्रतिकूलता से डरो मत, अपितु धैर्यपूर्वक प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करो। विधान में अविचल आस्था करो। सब ओर से मन हटाकर, पूरी शक्ति लगाकर, प्रियजनों की सेवा करना है। सेवा का अवसर बार-बार नहीं मिलता। इतना ही नहीं, सेवा बिना किये, सर्वांश में ममता का भी नाश नहीं होता। सेवा के रहस्य को तुम भलीभाँति जानती हो-ऐसा मेरा विश्वास है। मेरी सद्भावना सदैव तुम्हारे साथ है।

सर्व समर्थ प्रभु अपनी अहैतुकी कृपा से तुम्हें कर्त्तव्यनिष्ठ बनाएँ। यही मेरी सद्भावना है।

जहाँ रहो, प्रसन्न रहो। जो करो, ठीक करो। यथा समय पत्र लिखती रहो।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

53

अजमेर

13.8.46

भक्तवर प्रिय,

सप्रेम नारायण।

पत्र के स्वरूप में दर्शन मिला। यह जानकर कि चि॰ की आँखें तंग कर रहीं हैं। मेरे विचार से अधिक दिनों तक कोई तेज दवा नहीं लगवानी चाहिये। साधारण हल्की दवा और कोई खाने की औषधि आयुर्वेदिक अथवा होमियोपैथिक जो सुविधापूर्वक मिल सके, वह दे देना चाहिये। त्रिफला खिलाना तथा उसके जल से धोना भी हितकर होगा।

रोगी, बालक, विरक्त महिलाओं की सेवार्थ आप लोग जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसके लिये धन्यवाद!

आपने लिखा है कि प्रीति जागृत नहीं होती। गहराई से देखिये, प्रीति उत्पन्न होने के केवल दो ही मुख्य कारण हैं-अपनत्व तथा आवश्यकता। क्योंकि जिसको हम सद्भावपूर्वक अपना मान लेते हैं, उससे प्रीति स्वतः हो जाती है अथवा जिसकी आवश्यकता होती है, उससे प्रीति अपने आप होती है। जैसे, प्यास लगने पर पानी से अथवा शरीर आदि सम्बन्धियों को अपना मानने से प्रीति सभी को होती है। अतः सद्भावपूर्वक प्रेमपात्र को अपना समझो अथवा उनको वर्तमान जीवन की आवश्यकता समझो। क्योंकि भविष्य की आशा सच्ची व्याकुलता नहीं होने देती। प्यारे! सर्व समर्थ प्रेमपात्र सर्व देश, सर्व काल में हैं। उनसे केवल न जानने की दूरी है, जो तीव्र जिज्ञासा होने पर मिट जाती है। अतः प्रेमी को प्रेमपात्र से कभी निराश नहीं होना चाहिए।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

54

पेटलाद

16-01-51

परम आस्तिक कर्त्तव्यनिष्ठ,

सादर सप्रेम यथोचित।

आपका 3 तारीख का लिखा हुआ पत्र यथा समय मिल गया था। आपने जो कुछ लिखा है, वह अक्षरशः सत्य मालूम होता है।

मुझे अपनी निर्बलता का दुख है कि मैं मानव-समाज की इन कुरीतियों को न मिटा सका कि जिनके कारण मानव एक अजीब अशान्ति में आबद्ध हो गया है।

सर्व समर्थ भगवान् हम सब लोगों को सद्बुद्धि प्रदान करें, जिससे कर्त्तव्यनिष्ठ होकर अपनी बेसमझी से उत्पन्न हुई अशान्ति मिट जावे। यह तो रही सैद्धान्तिक बात।

इस सिद्धान्त तक पहुँचने के लिये हमें वर्तमान में क्या करना है? इस पर विचार करना अनिवार्य हो जाता है। किसी अन्य को बदलने से पूर्व हमें अपना परिवर्तन करना है, अर्थात् हम व्रत ले लें कि बालकों के विवाह में दहेज माँगने की बात ही क्या है, भावना तक न करेंगे और यदि हमारे पास अर्थ होगा, तो बालिकाओं को बिना ही माँगे देंगे।

इस व्रत को सच्चाई पूर्वक कर लेने के बाद हमारी सहायता प्रभु की अहैतुकी कृपा अवश्य करेगी, क्योंकि धर्म उन्हीं का विधान है। अभी तक तो हमारे भीतर के मन में लेना और देना, दोनों ही विद्यमान हैं। सर्व-अन्तर्यामी इस बात को जानते हैं। जब हम उनकी दृष्टि में ठीक हो जायेंगे, तब प्रतिकूलता 'अनुकूलता' में अवश्य बदल जायेगी-ऐसा मेरा विश्वास है।

हम लोगों को चाहिए कि बड़ी ही गम्भीरतापूर्वक अपने मन की छिपी हुई कमजोरियों को देखें और मिटाएँ। मेरे विश्वासानुसार प्रतिकूलताएँ

प्राणी के परिवर्तन के लिये आती हैं। यह विधान है। विधान का आदर करना धर्म है। धर्माचरण से किसी का ह्रास नहीं होता। यह निर्विवाद सिद्ध है।

आप सोचेंगे कि वर्तमान उलझन पर कुछ न लिख कर-लगे ज्ञान (Philosophy) छाँटने। यह बात भी कुछ ठीक ही है, क्योंकि आपके मन में अर्थ होने पर, न देने की बात तो है ही नहीं। गहराई से यदि सोचें, तो ज्ञात होगा कि देने के स्थान पर लेने की भावना भी विद्यमान है। हम लोग भी अपने बालकों के लिये रूपवती, गुणवती वधू तथा मालदार सभ्य परिवार चाहते हैं। गुणवती तथा सभ्य परिवार तो आवश्यक अंग हैं। अर्थ तथा रूप काम-प्रिय प्राणियों की माँग है।

वैसे तो काम से ही जीवन का आरम्भ है। पर, हमें यथाशक्ति उससे असंग होना है, अर्थात् काम से राम की ओर जाना है, तभी हम आस्तिक साधक हो सकते हैं।

जब तक अनुकूलता न आए, तब तक धीरजपूर्वक शान्त रहना चाहिए। धर्मशास्त्र में बड़े से छोटे का विवाह पहले करना निषेध है। इससे आयु और तेज घटता है। प्रभु हमें धर्मात्मा बनाएँ-यही मेरी सद्भावना है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

- ❖ प्रेमपात्र के विरह तथा तत्त्व-चिन्तन से हृदय शुद्ध कर लो।
- ❖ भलाई का चिन्तन भलाई से अधिक भलाई है, क्योंकि चिन्तन से दृढ़ता आ जाती है।
- ❖ विषय-चिन्तन मिटाने के लिये भगवत्-चिन्तन का स्वभाव बनाओ।

55

बनारस

07-08-61

स्नेहमयी साधननिष्ठ लाडली बेटी,

बहुत-बहुत प्यार।

प्यारी बेटी! मानव जीवन में प्रतिकूलताओं से भयभीत होने का कोई स्थान ही नहीं है; कारण, कि प्रतिकूलता तथा अनुकूलता दोनों ही परिस्थितियाँ साधनरूप हैं, अर्थात् प्रत्येक परिस्थिति साधन सामग्री के अतिरिक्त और कुछ नहीं है; कारण, कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ समान अर्थ रखती हैं। परिस्थितियों की भिन्नता और अर्थ की एकता यह सृष्टि की शोभा है, रचयिता की अलौकिकता है। भिन्नता में एकता का दर्शन स्पष्ट होता है। दुलारी बेटी! गम्भीरतापूर्वक विचार करो कि विश्व के इतिहास में क्या कोई ऐसा मानव है, जिसकी सभी कामनाएँ पूरी हो जाएँ? अथवा कोई भी कामना पूरी न हो? कदापि नहीं। कुछ कामनाएँ पूरी होती हैं और कुछ नहीं होतीं। इस विधान से यह स्पष्ट हो जाता है कि कामना-पूर्ति मानव-जीवन का उद्देश्य नहीं है और कामना मात्र से कोई कामना पूरी नहीं होती, अपितु आवश्यक कामना की पूर्ति विधान से ही होती है। इस दृष्टि से प्रत्येक परिस्थिति में प्रत्येक मानव को निष्काम होना अनिवार्य है। निष्काम होने के लिये ममता रहित होना आवश्यक है। ममता रहित होने के लिये विवेकपूर्वक संयोग में वियोग का दर्शन करना है। ऐसा बिना किये, कोई भी निष्कामता से उदित परम शान्ति और असंगता से प्राप्त स्वाधीनता एवं आत्मीयता से जाग्रत अखंड स्मृति तथा अगाध प्रियता सम्भव नहीं है, जो वास्तविक जीवन है। निष्कामता पूर्वक पवित्र भाव से प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करती रहो। यह तभी सम्भव होगा, जब प्रतिकूलताओं में धीरज सुरक्षित रहे। उसके लिए प्रत्येक कार्य के आदि और अन्त में

शान्ति का सम्पादन अनिवार्य है। सब प्रकार से सर्व समर्थ प्रभु की होकर रहो और वर्तमान कर्त्तव्य-कर्म को उन्हीं की पूजा जानो और उन्हीं के नाते, सभी को आदर तथा प्यार दो। यही सफलता की कुंजी है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

56

गीता भवन

3.5.66

स्नेहमयी साधननिष्ठ दुलारी बेटी,

सप्रेम हरि स्मरण तथा बहुत-बहुत मधुर स्नेह।

जहाँ रहो, प्रसन्न रहो। जो करो, ठीक करो। और सब प्रकार से सर्व समर्थ प्रभु की हो कर रहो। कारण, कि एक मात्र वे ही तुम्हारे अपने हैं। तुम्हें प्रत्येक कर्त्तव्य-कर्म द्वारा उनकी पूजा करनी है और उनकी मधुर स्मृति होकर रहना है। मानव-जीवन की सार्थकता तभी होगी, जब तुम अपने में ही अपने प्रेमास्पद को पाओगी। जो सदैव हैं सर्वत्र हैं, सभी में हैं, समर्थ हैं, वे ही तुम्हारे अपने हैं। अपने में अपनी प्रियता सहज तथा स्वाभाविक है। प्रियता की अभिव्यक्ति होने पर नीरसता का सदा के लिये अन्त हो जाता है, जिसके होते ही जीवन रस रूप हो जाता है, खिन्नता, क्षोभ, क्रोध आदि विकारों का नाश हो जाता है। इस कारण तुम्हें शीघ्र अति शीघ्र अपने में अपने प्रेमास्पद को पाकर कृत-कृत्य हो जाना चाहिए। सफलता अवश्यम्भावी है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

57

हरिद्वार

30.3.62

स्नेहमयी साधननिष्ठ प्रिय पुत्री,

बहुत-बहुत प्यार।

मानव का अधिकार प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग में ही है। तुम आई हुई परिस्थिति का धीरजपूर्वक सदुपयोग करती रहो। आदरणीय माता जी एवं बाबू जी की यथेष्ट सेवा तथा बालकों के विकास पर दृष्टि रखना है, प्राप्त बल का सदुपयोग करना है। जो न कर सको, उसके लिये चिन्ता न करो। और जो कर सकती हो, उसे धीरजपूर्वक करती रहो। किसी भी परिस्थिति में अधीर नहीं होना है। निश्चिन्तता, निर्भयता तथा शान्ति को सुरक्षित रखना है। जीवन-संग्राम में हार नहीं मानना है। सर्व समर्थ प्रभु की अहैतुकी कृपा का आश्रय ही मानव का वास्तविक आश्रय है। प्रतिकूलताओं से भयभीत होना भूल है, अपितु सेवा, त्याग, प्रेम को अपनाकर सत् पथ पर अग्रसर रहना है। सफलता अनिवार्य है। शरीर से दूर रहने पर भी मेरी सद्भावना सदैव तुम लोगों के साथ है। शरीर को जब तक रहना है, रहेगा ही। प्राणों के रहते हुए ही विवेकपूर्वक शरीर से असंग होने में ही वास्तविक जीवन से अभिन्नता होती है। मिले हुए का सदुपयोग करना है, अप्राप्त का चिन्तन नहीं। कर्त्तव्यपरायणता, असंगता एवं आत्मीयता में ही जीवन की पूर्णता निहित है, जो एक मात्र सत्संग से ही साध्य है। जाने हुए असत् के त्याग में ही सत् का संग है। मेरी सद्भावना सदैव तुम लोगों के साथ है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

❖ विवेक के आदर में ही अविवेक का नाश है।

58

किरांची

9.4.46

भक्तवर प्रिय पुत्री,

सर्वदा अभय रहो।

आजकल गृह अस्पताल बन गया है। तुम्हारा पवित्र शरीर भी पलंग पर पड़ा है। रोग भगवान् भोग तथा शरीर की वास्तविकता का ज्ञान कराने के लिये आते हैं। अतः आये हुये रोग का अभिवादन करो और अपने को शरीर से असंग कर लो। असंग होते ही निर्वासना आ जायेगी। निर्वासना आते ही हृदय निर्वैरता, निर्भयता, समता, मुदिता आदि पवित्र गुणों से भर जावेगा।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

59

परम प्रिय आनन्द कन्द,

संकल्प की दृढ़ता के लिये व्याकुलतापूर्वक दुःखी हृदय से सर्व समर्थ भगवान् से प्रार्थना करो। सद्भावपूर्वक की हुई प्रार्थना अवश्य सफल होती है।

सोते समय यह संकल्प करो कि मैं ब्रह्मचारी हूँ। कुछ दिन तक लगातार प्रतिदिन ऐसा करने से ब्रह्मचर्य पालन की शक्ति आ जायेगी। शरीर को सबल बनाओ, बाह्य वस्तुओं से मत सजाओ। ज्यों-ज्यों सादा जीवन बनाते जाओगे, त्यों-त्यों ब्रह्मचर्य पालन की शक्ति आती जायेगी।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

60

जोधपुर

28.9.51

सौभाग्यवती लाडली बेटी तथा चिरंजीव दुलारी बेटी,

तुम दोनों के पत्र मिले गये। शरीर स्वभाव से ही अनेक व्याधियों का घर है। इसी कारण विचारशील अपने को शरीर से असंग होने के लिये अथक प्रयत्न करते हैं। सर्व समर्थ भगवान् अपनी अहैतुकी कृपा से तुम्हें विवेक प्रदान करें, जिससे तुम आये हुए दुःख का सदुपयोग कर सको। यह मेरी सद्भावना है।

सुख-दुःख दिन रात के समान आने-जाने वाली वस्तुएँ हैं। अतः मोह को त्याग, धर्मपूर्वक भगवत् नाते, प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करती रहो। यह भलीभाँति समझ लो कि विश्वास करने योग्य केवल श्रीहरि की अहैतुकी कृपा तथा अपना कर्त्तव्य है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

61

स्वधर्मनिष्ठ स्नेहमयी पुत्री,

सर्वदा अभय रहो।

यह जानकर कि तुम गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर रही हो, बड़ा हर्ष हुआ। जिस वीरता, गम्भीरता एवं सदाचारपूर्वक तुमने ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन किया है, उसी वीरता, गम्भीरता एवं सदाचारपूर्वक गृहस्थ आश्रम का पालन करना चाहिए। गृहस्थ आश्रम मन में छिपी हुई अर्थ तथा काम की वासनाओं को धर्मानुसार प्रवृत्ति द्वारा मिटानेका साधन है। साधन में साध्य-बुद्धि विचारशील नहीं करते, अर्थात् साधन

में जीवन-बुद्धि नहीं करते, किन्तु साधन का आदर अवश्य करते हैं। साधक साधन को अपना लेने पर ही साध्य से अभिन्न हो सकता है। साध्य से अभिन्न होने की दृष्टि से तो साधन परम प्रिय वस्तु है। परन्तु साधन को 'साध्य' मान लेना प्रमाद है।

जिस प्रकार ब्रह्मचर्य आश्रम गृहस्थ आश्रम का साधन है, उसी प्रकार गृहस्थ आश्रम वानप्रस्थ आश्रम का साधन है और वानप्रस्थ 'त्याग' का साधन है।

ब्रह्मचर्य आश्रम में गुणों के विकास की महत्ता है और गृहस्थ आश्रम में न्याय तथा नियमपूर्वक सीमित उपभोग एवं उपार्जन किय हुए अर्थ द्वारा रोगी, बालक, विरक्त की भगवत् नाते, सेवा करना मुख्य ध्येय है। ऐसा करने से अर्थ और काम का राग मिट जावेगा, अर्थात् इन्द्रियलोलुपता, 'जितेन्द्रियता' में तथा व्यर्थ-चिन्तन 'सार्थक-चिन्तन' (तत्त्व चिन्तन, ईश्वर चिन्तन) में एवं स्वार्थ 'सेवा' में परिवर्तित हो जावेगा, जो उन्नति का मूल है।

गृहस्थ होने का वही अधिकारी है, जो जगत् रूपी मनोहर वाटिका में सुन्दर-सुन्दर सुमन उत्पन्न कर, उसके राग से मुक्त होने में समर्थ हो। अतः तुम अपने से योग्य संतान उत्पन्न कर, गृहस्थ आश्रम को सार्थक बनाओ। इसके लिये पति-पत्नी में धान के समान एकता अनिवार्य है। देखो, जब तक चावल और उसका छिलका मिला रहता है, तभी तक वृद्धि में समर्थ हो सकता है। यह सभी जानते हैं।

पति और पत्नी केवल शरीर दृष्टि से दो भले ही हों, किन्तु भाव तथा विचार की दृष्टि से एक हों, क्योंकि प्रेम वह गणना है कि जिसमें एक और एक मिलकर एक होते हैं, दो नहीं।

वर-वधू को अपनी-अपनी प्रतिज्ञा पर हिमालय के समान अचल रहना चाहिए। उन्नतिशील प्राणी केवल अपने कर्त्तव्य पर विशेष ध्यान देते हैं, दूसरों की ओर नहीं देखते। ऐसा करने से अपने में स्वतः

आत्मबल का प्राकट्य होता है, जो वास्तव में मानवता है। इतना ही नहीं, कर्त्तव्यनिष्ठ प्राणी किसी का ऋणी नहीं रहता। जो किसी का ऋणी नहीं रहता, वही नित्य जीवन, नित्य रस, नित्य प्यार को प्राप्त कर, कृत-कृत्य हो जाता है, जो वास्तव में मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है।

हम भारतीयों में यह प्रथा प्रचलित है कि पाणिग्रहण संस्कार के अंत में वर-वधू कंगन की गाँठ खोलते हैं। इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि टूट न जावे, ज्यों-की-त्यों खुल जावे। दोनों ही खोलने में प्रयत्नशील होते हैं। जो प्रथम खोलता है, उसकी विशेषता मानी जाती है, यद्यपि खोलना दोनों के लिये अनिवार्य है। इस प्रथा का वास्तविक अर्थ यही है कि जिस प्रसन्नता से आज हम लोग गृहस्थ हो रहे हैं, उसी प्रसन्नता से एक दिन वनस्थ हो जायें। गाँठ खोलने का अर्थ यह है कि छिपा हुआ राग मिट जावे। गाँठ न टूटे, इसका भावार्थ यही है कि मन में अर्थ और काम का राग शेष न रहे, जिससे पुनः गृहस्थ न होना पड़े। इसी को सजीव बनाने के लिये हम भारतीयों में सती धर्म की महत्ता है। अतएव सर्व समर्थ लीलामय भगवान् से प्रार्थना है कि तुम्हारी जीवन यात्रा आदर्श सती-साध्वी बनकर पूर्ण हो।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

62

वृन्दावन

11.7.69

साधनपरायण कर्त्तव्यनिष्ठ लाडली बेटी,

बहुत-बहुत प्यार।

सत्संग का फल प्रभु के नाते, प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करना तथा 'उनकी' स्मृति जगाना है, जिनसे तुम ने आत्मीय

सम्बन्ध स्वीकार किया है। प्रभु विश्वासी शरणागत साधक सब प्रकार से निश्चिन्त तथा निर्भय रहता है, पूजा करता है, लीला देखता है और सब प्रकार से 'उन्हीं' का होकर रहता है। तुमने जिस वीरता और धैर्य से आए हुए सुख-दुःख का सदुपयोग किया है, उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। पर बेटी! प्रत्येक कार्य के आरम्भ और अन्त में सहज भाव से मधुर स्मृति होती रहे, प्रेम की भूख उत्तरोत्तर बढ़ती रहे-बस, यही सफलता की कुंजी है।

तुम बड़ी ही भाग्यशाली हो कि तुम्हारा समय अधिकतर सेवा में ही व्यतीत होता है। पर बेटी, सेवा का अन्त त्याग तथा प्रेम में होना चाहिए, तभी सेवा सार्थक होती है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

63

5.1.50

स्नेहमयी प्रिय पुत्री,

सर्वदा प्रसन्न रहो।

शारीरिक विकास व शिक्षित होने पर अर्थ और काम की वास्तविकता का अनुभव करने के लिये तथा पितृ-ऋण से मुक्त होने के लिये एवं अतिथियों की सेवा करने के लिये मानव को ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में प्रवृत्त होना अनिवार्य है। इसी नियमानुसार अब तुम गृहस्थ होने जा रही हो। यह बड़े हर्ष की बात है।

प्यारी बेटी! परस्पर में प्रीति तथा एकता तभी सुरक्षित रह सकती है, जब एक दूसरे की निर्बलताओं को सहर्ष सहन करने का स्वभाव बना लिया जावे, अर्थात् अपने-अपने स्थान पर ठीक रहते हुए अपने जीवन साथी की कमजोरियों को अपने कर्त्तव्य से पूर्ण करते रहें।

अतः तुम अपनी प्रीति सुरक्षित रखने के लिये सदैव प्रयत्नशील बनी रहो। तभी गृहस्थ जीवन सुख तथा विकास का हेतु (कारण) हो सकता है।

मैं तुम दोनों को ही भलीभाँति जानता हूँ। तुम दोनों ही मेरे प्यारे बच्चे हो। इस कारण मैं अपना धर्म समझता हूँ कि तुम दोनों को यह बात भलीभाँति समझा दूँ कि अपने-अपने गुण तथा योग्यता से एक दूसरे की कमजोरी सहर्ष सहन कर, प्रसन्न रहना चाहिए। दो गुणों का संघटन अधिक सुरक्षित नहीं रहता। किसी का गुण किसी के दोष की औषधि हो जाने पर ही सच्ची एकता सुरक्षित रहती है।

अतएव अपने गुण का उपयोग किसी के दोष पर विजय प्राप्त करने के लिये ही करना चाहिए। जो लोग अपने गुण का उपयोग केवल अपने सुख के लिये करते हैं, वे कभी प्रीति जैसी पवित्र वस्तु को सुरक्षित नहीं रख सकते। प्यारी बेटी! प्रीति वह गणना है, जिस में एक और एक मिलकर एक होते हैं, दो नहीं।

कान्ता भाव में दास्य, साख्य, वात्सल्य आदि सभी भावों का समावेश है। इसी दृष्टि से मधुर भाव सभी भावों से उत्कृष्ट भाव है। दास्य भाव में केवल प्रीति ही जीवन है, सुख-स्वार्थ, दोनों का त्याग है। अर्थात् त्याग का पाठ पढ़ने के लिये ही कान्ता भाव की महत्ता है। तभी तो भारतीय महिला सदैव त्याग में ही अपना महत्त्व समझती रही।

पुरुष अर्थ उपार्जन में भले ही सफल हो, पर मातृ- शक्ति पुरुष के निर्माण में समर्थ है। इस दृष्टि से मातृ-शक्ति पर कितना बड़ा उत्तरदायित्व है? तुम स्वयं विचार करो। पुरुष का निर्माण पुरुष नहीं कर सकता। यह निर्विवाद सत्य है।

अतः तुम दोनों आदर्श गृहस्थ बन कर, संसार रूपी वाटिका को सुशोभित कर, सुन्दर-सुन्दर सुमन उत्पन्न करो। सर्व समर्थ भगवान् तुम दोनों को सुबुद्धि प्रदान कर, कर्त्तव्यनिष्ठ बनाएँ-यही मेरी सद्भावना है।

पुनः तुम दोनों को बहुत-बहुत प्यार।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा पिता,

शरणानन्द

64

गाजीपुर

14.2.55

सौ॰ स्नेहमयी लाडली बेटी,

बहुत-बहुत प्यार।

बलरामपुर के पत्र में तुमने कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं। उनसे यह प्रतीत होता है कि तुम अपनी वस्तुस्थिति के सम्बन्ध में मेरे विचार जानना चाहती हो, जिसका संकेत परम प्रिय..... के पत्र में लिखा चुका हूँ। आत्म-विश्वास आ जाने पर शुद्ध संकल्पों को पूरा करने में और अशुद्ध संकल्पों के त्याग में कोई कठिनाई नहीं होना चाहिये। अथवा यों कहो कि अशुद्ध संकल्पों की तो उत्पत्ति ही नहीं होनी चाहिये और शुद्ध संकल्पों की पूर्ति में उस समय तक बाधा नहीं होनी चाहिये जब तक कोई परिस्थितिजन्य प्रतिकूलता न हो। केवल प्रियजनों के भय से भयभीत होकर, आवश्यक संकल्प-पूर्ति के लिये प्रयत्नशील न होना अपने पर अविश्वास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो स्वयं अपने पर विश्वास नहीं करता, उस पर कोई विश्वास नहीं करता। दैनिक जीवन-यात्रा का भी कोई सिद्धांत होना चाहिये। उसके लिये भी मर्यादा अपेक्षित है। भीतर मन में द्वन्द्व रखना और ऊपर शान्त बने रहना, क्षमता नहीं है, अपितु निर्बलता है। इस निर्बलता से प्राणी कभी अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर पाता। यद्यपि जीवन में कटुता, क्रोध तथा दुराग्रह के लिये कोई स्थान नहीं है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जीवनोपयोगी संकल्पों की पूर्ति के लिये मधुरता एवं दृढ़तापूर्वक प्रयत्नशील

नहीं होना चाहिये। क्या कारण है कि जब तुम अपने प्रियजनों की प्रत्येक आवश्यक बात पूरी करने का प्रयत्न करती हो, तो वे लोग तुम्हारे मन की साधारण बात भी पूरी करने के लिये उत्साह का परिचय नहीं देते? सेवा वह तत्त्व है कि जिससे दूसरे का मन इस बात के लिये लालायित रहता है कि हमें किसी प्रकार सेवा करने वाले की मन की बात पूरी करने का अवसर मिल जाये। तुम्हें अपनी आन्तरिक स्थिति का अध्ययन करना चाहिये कि तुम्हारी सेवा में कौन सा ऐसा दोष है कि जिसके कारण तुम्हारा मन प्रियजनों का मन नहीं बन गया? अनेक बार तुम्हारे कुटुम्बीजनों ने तुम्हारे स्वभाव की प्रशंसा की है और तुमने भी मुझसे कभी किसी की निन्दा नहीं की। परस्पर में एक दूसरे के प्रति सद्भाव तथा स्नेह भी है, तो भी तुम अपने मन की वह बात कि जिसे तुम करना चाहती हो, नहीं कर पाती, परिस्थिति अनुकूल होने पर भी? इन सब बातों पर विचार करने से तो यही स्पष्ट होता है कि तुम्हारे मन में कोई गुत्थी (Complex) है अथवा तुम्हारे मन में कोई भय है। इस कारण तुम स्पष्ट अपने मन की बात न कह पाती हो, न समझा पाती हो, केवल सोचती रहती हो, जो वास्तव में व्यर्थ-चिन्तन है।

व्यर्थ-चिन्तन के होते हुए, न तो मन शान्त होता है, न शुद्ध और न सबल। मन की निर्मलता बड़े ही महत्त्व की वस्तु है। पर वह तभी सम्भव है, जब व्यर्थ-चिन्तन मिट जाये। व्यर्थ-चिन्तन मिटाने के लिये अपने मन की सारी बात स्पष्ट कह देना आवश्यक है। सभी प्रियजनों को यथोचित एवं चि॰ बालक एवं बालिका को बहुत-बहुत प्यार। पुनः तुम दोनों को बहुत-बहुत प्यार।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

❖ भलाई करके कोई भला नहीं होता। स्वयं भला होकर भलाई स्वतः होती है। यह वैज्ञानिक तथ्य है।

आगरा

प्रिय पुत्री,

साधारणतः गुरुजन अप्रसन्न नहीं होते और यदि होते हैं, तो शिष्य वर्ग के हित के लिये। आजकल पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव गुरु-शिष्य, दोनों पर ही हो गया है। कभी-कभी बड़े लोग भी प्रमाद और मोहवश कुछ का कुछ कहने लगते हैं। परन्तु निर्दोष होने पर भी, बड़ों का सम्मान सहनशीलता बढ़ाने के लिए आवश्यक है; क्योंकि सहनशीलता परम बल है। जिस प्रकार वसा रहित अग्नि अपने आप बुझ जाती है, इसी प्रकार सहनशील प्राणी पर किया हुआ आक्रमण अपने आप नष्ट हो जाता है। शरीर में बल, ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने से, शुद्ध आहार करने से, प्रसन्नचित्त रहने से अपने आप बढ़ता है। प्रत्येक खानपान, वस्तुओं आदि की प्रवृत्तियों को शारीरिक हित एवं खिलाने व पहनाने वालों की प्रसन्नता के भाव से करना ही सर्व इन्द्रियों का ब्रह्मचर्य है। विद्या-अध्ययन, सुन्दर-सुन्दर पुस्तकों का पठन-पाठन भी ब्रह्मचर्य व्रत है। ईश्वर-चिन्तन भी ब्रह्मचर्य है; क्योंकि ब्रह्म में आचरण करना ही ब्रह्मचर्य की पूर्णता है। समाज में जो स्थान हो तथा अपने को जो प्रकाशित किया हो, उसके विधान के अनुरूप ही कार्य करने पर हृदय में निर्भयता आ सकती है; क्योंकि भय तब उत्पन्न होता है, जब हम वह करते हैं, जो हमें नहीं करना चाहिये। आप अपने को जो मानती हो, उसके विपरीत कोई भी काम मत करो। अपनी मानी हुई अहंता के अनुरूप कार्य करने से हृदय में निर्भयता तथा समाज में आदर अपने आप हो जाता है। संसार में आदर उसी प्राणी का होता है, जो दूसरों के काम आता है, अर्थात् जिसका प्रत्येक कार्य दूसरों की प्रसन्नता के लिये ही होता है। देवी! ऐसा कोई भी संकल्प मन में न उठने दो, जिसको प्रकाशित करने में भय हो। यदि किसी कारणवश मन में ऐसा संकल्प उत्पन्न हो जावे, तो अपनी अम्मा से कह दो।

माता-पिता तथा गुरुजनों के साथ निष्कपट व्यवहार करने से प्राणी बड़ी से बड़ी बुराइयों से बच जाता है। जिसके मन से वस्तुओं का लालच निकल जाता है तथा जिसके मन में दुःखियों को देख कर करुणा और सुखियों को देख कर प्रसन्नता उत्पन्न होने लगती है तथा जिसके मन में किसी को दुःख देने का भाव उत्पन्न नहीं होता, उसका मन अपने आप निर्मल हो जाता है। मन की निर्मलता परम धन है।

सेवा भाव से तथा पवित्र संकल्प उत्पन्न करने से एवं सर्व हितकारी चिन्तन से मानसिक उन्नति हो सकती है। जिसका मन विश्व के दुःख से दुःखी होकर, विश्व के हित के लिये पवित्र संकल्प करता है, उसकी स्वाभाविक मानसिक उन्नति हो जाती है। नींद आने से पूर्व सद्भाव पूर्वक प्रतिदिन सोते समय यह प्रार्थना करें :- "हे नाथ! ऐसी शक्ति दो, जिससे मैं तुम्हारे काम आ जाऊँ और यह शरीर तुम्हारे विश्व के काम आ जाये।" "मैं" भगवान् की वस्तु हूँ और 'शरीर' विश्व की वस्तु है। मीरा आदि देवियों ने "मैं" भगवान् को व शरीर विश्व को दे दिया था। इसी कारण आज अनेक विद्वानजन उनके नाम से अनेकों सद्गुणों का प्रचार करते हैं। जिस प्रकार जेवर का बनाने वाला सुनार होता है और पहनने वाली महारानी होती है, उसी प्रकार पढ़ने वाला विद्वान और अमल करने वाला महापुरुष होता है। प्रिय देवी! चाहे थोड़ा ही पढ़ो, किन्तु उसके अनुरूप जीवन बनाने का प्रयत्न करो। क्योंकि हृदय की उन्नति मस्तिष्क की उन्नति से अधिक श्रेष्ठ होती है। अकर्मण्यता तथा आलस्य के लिए जीवन में कोई स्थान नहीं है। अतः कर्म-वीर होकर जीवन व्यतीत करो। किसी भी कठिनाई से कभी मत डरो। संसार से अपना मूल्य अधिक समझो। आत्मविश्वास तथा ईश्वर की कृपा पर भरोसा रखो। सभी को यथायोग्य।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

66

पुष्कर (अजमेर)

22.07.62

स्नेहमयी कर्त्तव्यनिष्ठ लाडली बेटी,

बहुत-बहुत प्यार।

ता॰ 18 का लिखा हुआ पत्र मिला। यह जानकर कि तुम्हारा शरीर अस्वस्थ रहा और तुम्हारे मन में उत्साह नहीं है, खेद हुआ। शरीर की अस्वस्थता में तो अदृष्ट हेतु हो सकता है, किन्तु मानसिक उत्साह न रहना तो एकमात्र अपना ही दोष है। तुमने वर्षों से यह पाठ पढ़ा है कि प्रत्येक परिस्थिति प्रेमी की दृष्टि में एक मात्र परम प्रेमास्पद का संदेश है और कुछ नहीं। तो फिर अनुकूलता तथा प्रतिकूलता का भेद कैसा? मुझे यही खेद है कि मेरी प्यारी बालिका इतनी भोली है कि प्रतिकूलताओं का आदरपूर्वक स्वागत नहीं कर पाती। सत्य का आदर करना ही वास्तविक सत्संग है। सत्य की चर्चा तो सर्वदा साधारण व्यक्ति भी करते रहते हैं। जब तुम यह जानती हो कि प्रत्येक परिस्थिति के सदुपयोग से ही प्राणी परिस्थितियों से अतीत नित्य जीवन प्राप्त कर कृत-कृत्य हो जाता है, तो फिर कैसी ही परिस्थिति क्यों न हो, उसमें चिंता की बात क्या है? जिसने अपनी सारी इच्छाएँ प्रेमास्पद के समर्पण कर दी हों, उसके जीवन में भय कैसा? जब अपनी इच्छा की पूर्ति न हो, तो समझना चाहिए कि मेरे प्रेमास्पद की इच्छा पूरी हो रही है। प्यारी बेटी! प्रेमास्पद की इच्छा की पूर्ति से प्रेमी को हर्ष तथा अनन्त नव उत्साह होता है, तो फिर तुम्हारे जीवन में उत्साह-हीनता क्यों? अनुकूल परिस्थितियों में तो साधारण विषयी प्राणी भी प्रसन्न तथा उत्साही दिखाई देते हैं; किन्तु प्रतिकूलताओं को सहर्ष अपनाते हुए नित-नव उत्साह का संचार तो सच्चे आस्तिक में ही होता है। तुम आस्तिक हो; अतः तुम्हारे जीवन में उत्साह-हीनता के लिये कोई स्थान

नहीं है। तुम्हारे परम प्रेमास्पद तुम्हें विवेक प्रदान करें, जिससे तुम उनकी दी हुई परिस्थिति का यथेष्ट सदुपयोग करने में समर्थ हो। यही मेरी सद्भावना है।

तुम प्रत्येक घटना में अपने प्रभु का हाथ देखो, उसे उन्हीं की लीला समझो। हृदय में सर्वहितकारी भावना रखते हुए 'उनकी' रजा में राजी रहने में ही सन्तोष करो। मन में चिरशान्ति तथा हृदय में सतत निर्भयता रहनी चाहिये। तुम्हारे सम्बन्ध में तुमसे भी अधिक तुम्हारे प्रभु जानते हैं। प्रत्येक सुख-दुःख के रूप में 'वे' ही छिपे रहते हैं। तुम सुख-दुःख का परदा हटा कर, 'उन्हीं' को देख लिया करो। जब तुम उन्हें पहचान लोगी, तो वे मुस्करा कर, तुम्हें अपने वास्तविक स्वरूप का दर्शन देकर, कृतार्थ कर देंगे-ऐसा मेरा विश्वास है। यदि कुछ काल के लिये तुम यहाँ आ जातीं, तो स्वास्थ्य अवश्य अच्छा हो जाता और नाथद्वारा वाली बाई का तथा अनेक महापुरुषों का भी दर्शन होता। सभी को यथोचित निवेदन करना।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,

शरणानन्द

67

रांची

मेरी निज स्वरूप प्रिय पुत्री,

पत्र के रूप में दर्शन मिला। "रसना-इन्द्री" पर विजय प्राप्त करने का उपाय तुमने पूछा है। देखो बेटी! खाना-पीना प्राणी का धर्म है। अतः भोजन करते समय हृदय में से यह भाव निकाल दो कि 'मैं खाती हूँ'। बल्कि यह भाव बनाओ कि मैं प्राण रूप अग्नि में भोजन की आहुति दे रही हूँ। अर्थात् यह भावना सद्भावपूर्वक दृढ़ करो कि मैं नहीं खाती। यह नियम है कि जिस क्रिया से हम अपने अहम् भाव को नहीं

मिलाते, उसी क्रिया का राग मन पर अंकित नहीं होता। जिस क्रिया का राग (Attachment) अंकित नहीं होता, उसकी वासना नहीं होती। अतः इस साधन से बड़ी सुविधापूर्वक रसना पर विजय प्राप्त की जा सकती है। किसी भी वस्तु को स्वाद के भाव से मत खाओ, बल्कि शारीरिक हित की दृष्टि से प्राण भगवान् को आहुति दो। इस प्रकार खिलाने से खिलाना यज्ञ हो जावेगा, जिससे जितेन्द्रियता प्राप्त होगी। देखो बेटी, जितेन्द्रियता के बिना कोई भी प्राणी स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकता। जितेन्द्रियता का बल सभी बलों से श्रेष्ठ बल है। जिसने अपने आप पर विजय प्राप्त की है, उसी को मानव-जीवन की वास्तविकता प्राप्त हुई है। अतः आपको सद्गुणों के संग्रह करने के लिये वीरता तथा गम्भीरतापूर्वक प्रयत्न निरन्तर करते रहना चाहिये। निर्वासना आने पर निर्वैरता, समता, मुदिता एवं निर्भयता आ जाती है। दिव्यगुणों के उपार्जन करने में आप सर्वदा स्वतंत्र हैं।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,
शरणानन्द

68

रानीखेत

22.6.51

मेरे निजस्वरूप परमप्रिय!

तुम्हारा तारीख 17 का लिखा हुआ पत्र मिला। शारीरिक अस्वस्थता अपने स्वभावानुसार यथावत चल रही है, पर तुम उसके लिए चिन्ता न करो; क्योंकि हम आस्तिकों को यही सीखना है कि वर्तमान का आदरपूर्वक सदुपयोग करते हुए, जो कुछ हो रहा है, उसी में प्रसन्न रहें।

मिले हुए विवेक के प्रकाश में मन के वास्तविक चित्र को देखना

और फिर योग्यतानुसार साधन में प्रवृत्त होना अनिवार्य है। मिली हुई शक्ति का सदुपयोग नवीन शक्ति स्वतः प्रदान करती है, यह निर्विवाद सत्य है। अतः कर्त्तव्यनिष्ठ आस्तिक के जीवन में भय, चिन्ता तथा निराशा के लिये तो कोई स्थान ही नहीं है। प्राणी को वही करना है, जिसे वह कर सकता है। 'उनके' होकर, 'उनके' नाते, सब कुछ करते हुए 'उनकी' अहैतुकी कृपा की बाट देखते रहो-यही निर्बल का बल तथा आस्तिक का जीवन है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,
शरणानन्द

69

अलख आश्रम, नाथद्वारा
10.10.51

मेरे निज स्वरूप प्रिय वत्स! बहुत-बहुत प्यार!

तारीख 5 का लिखा हुआ पत्र मिला। प्राप्त शक्ति का सदुपयोग करने पर आवश्यक विकास अपने आप हो जाता है। जिन प्राणियों ने वर्तमान का आदरपूर्वक सदुपयोग किया, उन्हीं का भविष्य आशाजनक बन जाता है। आस्तिक प्राणी के जीवन में निराशा के लिये कोई स्थान नहीं है। जिन्होंने सर्व समर्थ श्रीहरि को अपना मान लिया, उनका बेड़ा पार हुआ-ऐसा मेरा अनुभव है। सभी प्रियजनों को सप्रेम यथोचित निवेदन करना। पुनः तुमको बहुत-बहुत प्यार।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,
शरणानन्द

- ❖ असाधन के त्याग में ही साधन का निर्माण है।
- ❖ विवेक विरोधी कर्म, विश्वास तथा सम्बन्ध सर्वथा त्याज्य हैं।

70

वृन्दावन
27.6.54

मेरे निजस्वरूप परम प्रिय,

सप्रेम हरिस्मरण!

निर्बलताओं के मिटाने का उपाय पूछा है। निर्बलताओं का दर्शन ही उनके मिटाने का अचूक उपाय है। जब हम अपनी निर्बलताओं को विवेक-दृष्टि से देख लेते हैं, तो एक गहरी वेदना जाग्रत होती है। उस गहरी वेदना में निर्बलताओं-जनित राग भस्म हो जाता है। निर्बलताएँ मिटाई जा सकती हैं, पर अपने से छिपाई नहीं जा सकतीं।

सीमित गुणों के अभिमान से ही दोष पनपते हैं। जब व्यथित हृदय से सर्व-समर्थ प्रभु से प्रार्थना की जाती है, तो सभी दोषों का अन्त हो जाता है। जब साधक हार स्वीकार नहीं करता तथा निर्दोषता की उत्कट लालसा रखता है, तब साधक को सफलता अवश्य प्राप्त होती है। असफलता की वेदना से भी नित-नव आशा का संचार होता है।

जब हमारा लक्ष्य उस अनन्त को प्राप्त करना है, जो सर्वत्र और सर्वदा है, तब हार स्वीकार करना अपनी भूल ही है। प्राप्त प्रभु में अविचल आस्था, श्रद्धा और विश्वास रखना तथा अप्राप्त संसार की चाह छोड़ना प्रत्येक साधक के लिये आवश्यक है।

विवेकपूर्वक वस्तु, व्यक्ति आदि से असंग होने पर दीनता का अन्त होता है और दीनता मिटने पर अभिमान भी स्वतः मिट जाता है। दीनता और अभिमान, इन दोनों में से किसी एक को मिटाने पर, दूसरा स्वतः मिट जाता है।

वर्तमान को सरस बनाओ, इसी सद्भावना के साथ!

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

अकिंचन,
शरणानन्द

कानपुर
10.09.65

मेरे निजस्वरूप साधननिष्ठ प्रियवर,

सादर सप्रेम हरिस्मरण तथा बहुत-बहुत प्यार!

पत्र के स्वरूप में भेंट हुई। "प्रभु अपने हैं और सब 'उनका' है"-इस वास्तविकता को स्वीकार कर लो। अर्थात् अपने प्रभु हैं और सब कुछ प्रभु का है। प्रत्येक वस्तु पर उन्हीं की सील लगाकर निश्चिन्त तथा निर्भय होना है और उनकी आत्मीयता, अर्थात् अपनापन ही अपना सर्वस्व है।

प्रत्येक कर्त्तव्य-कर्म द्वारा उनकी पूजा करो और प्रत्येक घटना में उन्हीं की लीला देखो, उन्हीं के होकर रहो। उनकी प्रियता ही अपना जीवन है, जो एकमात्र उन्हें अपना मान लेने से जागृत होती है।

प्रियता अपने में जगेगी और उसका प्रभाव मन पर होगा, यह विधान है। इस विधान में अविचल आस्था कर, अभय हो जाओ।

शरणागत के जीवन में भय तथा चिन्ता के लिए कोई स्थान ही नहीं रहता; कारण, कि सर्व-समर्थ प्रभु शरणागत का भय हर लेते हैं और अभय दान देते हैं। उनकी महिमा का कोई वारापार नहीं है।

उनके सिखाने के अनेक ढंग हैं। अपने को 'अपना' स्वभाव से ही प्यारा लगता है, उसके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता।

'उनके' नाते की हुई सेवा भी भजन है। कर्मरूप से सेवा और हृदय से प्यार उत्तरोत्तर बढ़ता रहे, यही मेरी सद्भावना है।

अपने लिए कुछ नहीं करना है। जो कुछ करना है, वह विश्व-सेवा है। सेवा का अन्त प्रीति में स्वतः हो जाता है। प्रीति की जागृति में ही मानव-जीवन की पूर्णता निहित है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

सद्भावना सहित,
अकिंचन,
शरणानन्द

साधक महानुभाव,

कर्त्तव्य-परायणता, अर्थात् प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग का यह शुभ परिणाम होना चाहिए कि साधक अपने में सतुष्ट हो जाय। यह वैधानिक तथ्य है कि अपने में जीवन तथा जीवनधन है। इस वास्तविकता में अविचल आस्था रखनी चाहिये। 'जीवन' जड़ता, अभाव, पराधीनता, नीरसता आदि दोषों से रहित है। उसी को जीवन कहते हैं।

शरीर का सदुपयोग साधक को विद्यमान राग से रहित कर देता है और विवेकपूर्वक असंग होने से फिर नवीन राग भी उत्पन्न नहीं होता। रागरहित भूमि में ही योग, बोध और प्रेम की अभिव्यक्ति होती है, जो साधक की वास्तविक माँग है, जिसकी पूर्ति होने पर साधक साध्य से अभिन्न हो जाता है।

शरीर का सदुपयोग और उससे असंगता अनिवार्य है। पर, यह तभी सम्भव होगा, जब साधक श्रद्धा-विश्वासपूर्वक अपने ही में अपने प्रेमास्पद को स्वीकार करे। जिसकी वास्तविक माँग है, उसके अस्तित्व को स्वीकार करना सहज तथा स्वाभाविक होना चाहिये। माँग उसी की होती है, जिसका स्वतन्त्र अस्तित्व है, वही सभी साधकों का साध्य है।

आश्चर्य तो इस बात का है कि साधक को जो कुछ करना चाहिये, उसे करता भी नहीं और न करने के दुःख से दुखी भी नहीं होता। वह जितना समय और मन अनावश्यक कामों में लगाता है, उतना अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये नहीं लगाता।

यदि साधक अपने मन की वास्तविकता को विवेक के प्रकाश में खोलकर रखे, तो उसे मालूम होगा कि मन में बहुत से ऐसे संकल्प भरे हैं, जिनको मैं न तो पूरा करता हूँ और न मिटाता ही हूँ। यही कारण है कि मन संकल्पों के जाल में फँसा रहता है और शुद्ध नहीं हो पाता। चित्त शुद्ध न होने के कारण ही मुझे अपने लक्ष्य की प्राप्ति में विलम्ब

हो रहा है।

मनुष्य की स्थिति सदैव एक-सी नहीं रहती, बदलती रहती है। अतः साधक को सोचना चाहिये कि जब मैं वर्तमान स्थिति से अलग हो जाऊँगा, तब कहाँ और कैसे रहूँगा? इसका विवेकपूर्वक अध्ययन करने से साधक प्राप्त स्थिति से ऊपर उठने के लिए अग्रसर हो सकता है।

रुचि की पूर्ति के रस से मोहित रहने के कारण उसे करने का दुःख नहीं होता और जो सबसे अच्छी चीज है, उसे न पाने का भी दुःख नहीं होता। इसीलिए साधक अपने लक्ष्य की ओर नहीं बढ़ पाता।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

अकिंचन,
शरणानन्द

73

ऋषिकेश
18.06.60

मेरे निजस्वरूप साधनिष्ठ,

बहुत-बहुत प्यार!

प्रीति की एकता ही वास्तविक एकता है; कारण, कि प्रीति-दूरी, भेद तथा भिन्नता को नहीं रहने देती। साध्य की प्रियता में ही समस्त साधनों की परावधि है। 'वे' मौजूद हैं, तुमसे दूर नहीं हैं, तुम्हें देख रहे हैं। तुम सब ओर से विमुख होकर, 'उनकी' ओर देखो, जिससे उनकी दृष्टि तुम्हारी दृष्टि से मिल जाए। उनका प्यार ही तुम्हें उनसे मिला देगा; अर्थात् दूरी, भेद और भिन्नता नहीं रहने देगा। बस, यही मानव-जीवन की पूर्णता है।

सत्संग प्रत्येक साधक स्वाधीनतापूर्वक कर सकता है। इसके लिए किसी परिस्थिति-विशेष की आवश्यकता नहीं है। जब साधक मिले हुए शरीर आदि वस्तुओं की ममता, और देखे हुए संसार की कामना का त्याग कर देता हे, तब अपने आप चित्त सब ओर से विमुख

हो जाता है और फिर सर्व-समर्थ प्रभु की सन्मुखता प्राप्त होती है।

सत्संग का अर्थ है-जो मौजूद है, उसका संग। सतत् परिवर्तनशील सृष्टि जिसके प्रकाश से प्रकाशित है और जिसकी सत्ता से सत्ता पाती है, अपने को उसी का होकर रहना है। निरन्तर प्यारे प्रभु की मधुर स्मृति होती रहे और प्रत्येक घटना में उन्हीं की लीला का दर्शन करते रहो। लीला देखो, पूजा करो। सभी में सत्ता रूप से प्यारे प्रभु ही हैं। अतः किसी को भी कभी बुरा नहीं समझना चाहिए।

पुनः तुम्हें बहुत-बहुत प्यार!

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

अकिंचन,

शरणानन्द

74

मेरे निज स्वरूप,

जहाँ तक हो सके, कुछ काल के लिए हम लोग शान्त हो जाया करें; कारण, कि प्रत्येक कार्य के मूल में या श्रम के मूल में सभी, क्रिया रहित होते हैं, यह सभी का अनुभव है।

प्रत्येक गति के मूल में स्थिरता और गति के अन्त में भी स्थिरता है। यह प्राकृतिक तथा वैज्ञानिक तथ्य है।

प्रत्येक संकल्प की उत्पत्ति से पूर्व और प्रत्येक संकल्प की पूर्ति के पश्चात् स्वभाव से निर्विकल्पता रहती ही है। इस निर्विकल्पता का नाम ही 'मूक सत्संग' है, जिससे आवश्यक शक्ति का विकास होता है।

सुनने के पूर्व हम शान्त हो जाएँ और सुनने के पश्चात् भी शान्त हो जाएँ। सुनने के पूर्व शान्ति हमें सुनने की यथेष्ट सामर्थ्य प्रदान करेगी और श्रवण के अन्त में जो शान्ति होगी, वह सुने हुए को स्थिर कर देगी।

यह जो शान्त रहना है, यह बहुत बड़ा साधन है। पर इस रहस्य को कोई बिरले ही जानते हैं। इसलिए जहाँ तक हो सके, हमें स्वभाव

से ही शान्त रहना चाहिए। इसमें अहंकृति न लगाएँ, अर्थात्, 'हम नहीं बोलेंगे', ऐसी भावना भी न हो, अपितु सहज भाव से न बोलना, न सोचना, न देखना आ जाए, अर्थात् इन्द्रियों को भीतर-बाहर से शान्त रहने का स्वभाव बना लें, तो बहुत लाभ होगा।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

अकिंचन,
शरणानन्द

75

वृन्दावन
12.03.68

स्नेहमयी त्यागमूर्ति प्रीति स्वरूपा दुलारी बेटी,

बहुत-बहुत प्यार!

प्रीति ही प्राणी का वास्तविक जीवन है; क्योंकि प्रीति ही के आदान-प्रदान में नित नव-रस की अभिव्यक्ति होती है, जिससे नीरसता का अन्त हो जाता है। नीरसता का अन्त होते ही निर्विकारता अपने आप आ जाती है; क्योंकि नीरसता की भूमि में ही समस्त विकार उत्पन्न होते हैं।

सच्चा साधक संसार से सुख की आशा नहीं करता, अपितु मिली हुई वस्तु, सामर्थ्य तथा योग्यता के द्वारा विश्व के स्वरूप में अपने प्यारे प्रभु की सेवा ही करता है। सेवा वही कर सकता है, जो निज-विवेक का आदर करता है।

निज-विवेक का आदर करने पर साधक शरीरादि किसी भी वस्तु को अपना नहीं मानता और न किसी वस्तु, व्यक्ति आदि के द्वारा सुख का सम्पादन ही करता है, अपितु वस्तुओं का सदुपयोग और व्यक्तियों को आदर तथा प्यार सदैव देता रहता है; क्योंकि उसकी दृष्टि में एकमात्र अपने प्यारे प्रभु की सत्ता शेष रहती है। वह किसी को बुरा नहीं समझता और न किसी में ममता ही करता है, क्योंकि उसकी

आत्मीयता एकमात्र प्यारे प्रभु ही में है।

प्यारी बेटी! जिसने सरल विश्वासपूर्वक प्यारे प्रभु को ही अपना मान लिया है, वह बड़ी ही सुगमतापूर्वक समस्त भय तथा प्रलोभनों से मुक्त हो जाता है; क्योंकि भय का जन्म भेद से होता है। उसे बड़ी-से-बड़ी प्रतिकूलता भी भयभीत नहीं कर पाती और न वह अनुकूलताओं की दासता में ही आबद्ध होता है। उसकी दृष्टि में कोई 'और' नहीं रहता; क्योंकि वह प्रत्येक घटना में अपने प्यारे की अनुपम लीला का ही दर्शन करता है। इतना ही नहीं, उसे अनादर में आदर तथा तिरस्कार में प्यार की अनुभूति होती है। उसे यही प्रतीत होता है कि मेरे प्यारे मेरे हित के लिए ही सब कुछ करते हैं।

प्यारी बेटी! तन सेवा में और मन प्यारे प्रभु में अपने आप लग जाय, लगाने का प्रयास तक न करना पड़े, तभी प्रीति से अभिन्नता होती है। तुम प्रीति होकर अपने प्रेमास्पद को रस प्रदान करती रहो और उनकी अहैतुकी कृपा को ही अपना सर्वस्व जानो। बस, यही मेरी सद्भावना है।

पुनः तुमको बहुत-बहुत प्यार।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा पिता,

शरणानन्द

76

मेरे प्रेमी साधक महानुभाव!

दुःख का जीवन में बड़ा महत्त्व है। दुःख के बिना प्राणी का विकास नहीं हो सकता। दुःख का प्रभाव दुःख को खा लेता है तथा सुख-दुख से अतीत के जीवन में प्रवेश कराता है। पर हम अपने पर दुख का पूरा-पूरा प्रभाव नहीं होने देते। एक सहारा छूटता है, तो दूसरा सहारा पकड़ लेते हैं।

जब तक मानव सुख में दुःख का दर्शन नहीं करेगा, तब तक

दुःख आता ही रहेगा, उसे कोई रोक नहीं सकता। जब दुःख का प्रभाव पूरी तरह हो जाता है, तब दुखहारी श्रीहरि स्वयं दुःख हर लेते हैं। वर्तमान की वेदना ही भविष्य की सत्ता हो जाती है।

दुःख का प्रभाव कैसे हो? दुखियों को देख, करुणित होने तथा सुखियों को देख, प्रसन्न होने से दुःख का प्रभाव होता है। समस्त विकारों का मूल सुख-भोग का प्रलोभन है और समस्त विकास का मूल दुःख का प्रभाव है। जहाँ जीवन में दुःख का प्रभाव आया, वहाँ स्वतः सभी वस्तुओं, व्यक्तियों, अवस्थाओं व परिस्थितियों से सम्बन्ध स्वतः टूट जाता है। फिर दुखी के जीवन में सुख की दासता नहीं रहती, दरिद्रता का नाश हो जाता है। निर्लोभता एवं उदारता की उसके जीवन में स्वतः अभिव्यक्ति होती है।

सर्व-समर्थ प्रभु अपनी अहैतुकी कृपा से सभी साधक भाई-बहिनों को सुख-दुःख के बन्धन से मुक्त कर, परम स्वाधीन अविनाशी जीवन से अभिन्न कर दें, इसी सद्भावना के साथ आपको बहुत-बहुत प्यार!

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

अकिंचन,
शरणानन्द

77

लखनऊ
19.05.51

स्वधर्मनिष्ठ परम प्रिय,

बहुत-बहुत प्यार!

सरल विश्वास तथा ईमानदारी से पूर्ण हरा-भरा पत्र मिला। देखो भैया! सर्वान्तर्यामी रूप से सत्य सर्वत्र विद्यमान है। ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जिसमें विवेक न हो। विवेक के प्रकाश में किया हुआ कर्म वास्तव में सत्संग है। जो प्राणी इस सत्संग को कर लेता है, उसे बाह्य सत्संग की आवश्यकता नहीं होती। जब वह मिले हुए विवेक का आदर

नहीं कर पाता, तब उसके लिये विवकी गुरुजनों के निकट जाना अनिवार्य होता है।

सत्संग में कोई परिस्थिति बाधक नहीं है। हाँ, सत् के बहाने असत् का संग करने में अनेक बाधायें हैं। देखो भैया! शरीर का संग असत् का संग है। गुरुजनों के द्वारा मिले हुए साधन का संग सत् का संग है। साधक को साधन से विमुख करने में कोई भी परिस्थिति समर्थ नहीं है।

जहाँ रहो, प्रसन्न रहो; जो करो, ठीक करो। जब प्रत्येक कार्य उन्हीं के नाते करना है, तब फिर किसी भी परिस्थिति से भय क्यों? हाँ, कार्य के अन्त में व्याकुलतापूर्वक 'उनका' स्मरण अनिवार्य है। पुनः तुमको बहुत-बहुत प्यार!

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,
शरणानन्द

78

जोधपुर
28.09.51

मेरे निज स्वरूप परम प्रिय,

सरल विश्वास तथा मधुर स्नेह से हरा-भरा पत्र मिला। भगवत् नाते, प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करते हुए प्रत्येक कार्य के अंत में व्यथित हृदय से सर्व-समर्थ श्री हरि को पुकारो। इसी से कल्याण होगा।

यह भली-भाँति समझ लो कि विश्वास करने योग्य सर्व समर्थ प्रभु हैं और 'उनकी' अहैतुकी कृपा पाना अपना कर्त्तव्य है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

तुम्हारा,
शरणानन्द

❖ उस दुःख को प्रसन्नता पूर्वक अपनाओ, जिससे किसी का हित हो।

79

कानपुर
28.04.61

मेरे निजस्वरूप परम प्रिय,

बहुत-बहुत प्यार!

सर्वदा शान्त तथा प्रसन्न रहो। प्रतिकूलता से भयभीत होना भूल है। आई हुई कठिनाईयों को तप के समान समझकर सहन करो; डरो मत। प्रत्येक घटना में प्यारे की अनुपम लीला का दर्शन करो। सब प्रकार से उन्हीं के होकर रहो। उनकी अहैतुकी कृपा को ही अपना सर्वस्व जानो। व्यथित हृदय से उन्हीं को पुकारो। मेरी सद्भावना सदैव तुम्हारे साथ है।

'मानव सेवा संघ' की साधन-प्रणाली में साधक की योग्यता, सामर्थ्य एवं रुचि के अनुसार ही साधन-निर्माण की बात है। मानव सेवा संघ प्रत्येक साधक को स्वाधीन देखना चाहता है। इस कारण इस प्रणाली में परामर्श देने की प्रथा है, आज्ञा देने की नहीं।

तुम मुझे गुरु मानते हो, यह तुम्हारी उदारता है और कुछ नहीं। प्रभु की प्रेरणा और अहम् की आवाज कभी-कभी मिलजुल जाती है। बेचारा साधक अहम् की आवाज को प्रभु की प्रेरणा मानकर मनमुखी हो जाता है। इस कारण बड़ी सावधानीपूर्वक अपना निरीक्षण करना चाहिये।

प्रभु की आज्ञा मेरे जानते, प्रत्येक मानव को उदार होने की, समता में वास करने की एवं प्रेम से भरपूर होने की है; कारण, कि इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मानव का निर्माण हुआ है।

ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

सद्भावना सहित,
शरणानन्द

- ❖ स्वाधीनता ही चिन्मय जीवन से अभिन्न करती है।
- ❖ दीनता ही अभिमान को जन्म देती है।
- ❖ दीनता के अन्त में ही अभिमान का नाश है।

साधन-सूत्र

- अनावश्यक संकल्प के त्याग में ही आवश्यक संकल्प की पूर्ति निहित है।
- संकल्प पूर्ति के सुख की दासता के त्याग में ही संकल्प-निवृत्ति निहित है।
- संकल्प निवृत्ति की शान्ति, सुख की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्व की वस्तु है।
- जो किसी का बुरा नहीं चाहता, उसे सब कुछ मिल जाता है।
- दूसरों के प्रति किया हुआ ही अपने प्रति हो जाता है।
- बुराई का जीवन में कोई स्थान ही नहीं है।
- प्रलोभन-रहित भलाई ही वास्तव में भलाई है।
- बुराई के बदले में की हुई भलाई, बुराई को खा जाती है।
- अभय वही हो सकता है, जिससे किसी को भय न हो।
- जो दूसरों को भय देता है, वही भयभीत रहता है।
- जो स्वयं भयभीत है, वही दूसरों को भय देता है।
- देहाभिमान में ही समस्त भय निहित हैं।
- वस्तुओं की दासता ही दरिद्रता की जननी है।
- वस्तुओं के सदुपयोग में ही आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति निहित है।
- वस्तुओं का सदुपयोग प्राणियों की सेवा में है।
- दोषों का यथेष्ट ज्ञान और उनका नाश युगपद है।
- दोषों की पुनरावृत्ति ही उन्हें जीवित रखती है।
- की हुई भूल न दोहराने पर स्वतः मिट जाती है।
- सुख की आशा में ही समस्त विकार निहित हैं।

- सुख की दासता दोषयुक्त जीवन में ही निहित है।
- सुख उसी का दास है, जो सुख का दास नहीं है।
- सुख देने की लालसा ही सुख की दासता से मुक्त करती है।
- सुख की दासता के नाश में ही स्वाधीनता है।
- सुख में दुःख का दर्शन दुःख का अन्त करने में सामर्थ है।
- सुख-दुःख के सदुपयोग में ही साधन निहित है।
- जो किसी को भी सदा के लिये दोषी मान लेता है, वह निर्दोष नहीं हो सकता।
- निर्दोष वही हो सकता है, जिसे केवल अपने दोष का दर्शन होता है।
- परदोष-दर्शन के समान अन्य कोई दोष नहीं है।
- सर्वांश में किसी एक साधन के अपना लेने पर सभी साधन स्वतः आ जाते हैं।
- फलासक्ति कर्त्तव्य के अभिमान में आबद्ध करती है।
- मोहयुक्त क्षमा तथा क्रोधयुक्त त्याग निरर्थक है।
- उदारता, करुणा तथा प्रसन्नता की जननी है।
- उदारता में ही सुख का सदुपयोग निहित है।
- विरक्ति में ही दुःख का सदुपयोग निहित है।
- जो दुःख से भयभीत नहीं होता, उसी से दुःख भयभीत होता है।
- अनुकूलता की दासता तथा प्रतिकूलता के भय में ही अपना अनादर है।
- सत्य जीवन की जितनी रक्षा करता है, उतनी और कोई कर नहीं सकता।
- असत्य से जितनी क्षति होती है, उतनी और किसी से नहीं होती।
- अहं के नाश में अनन्त सामर्थ्य निहित है।

- आत्मीयता में ही प्रियता निहित है।
- संसार से निराश होने में ही संसार के स्वरूप का ज्ञान निहित है।
- संसार के स्वरूप के ज्ञान में ही संसार की निवृत्ति निहित है।
- संसार के काम आने पर ही संसार की दासता से रहित हो सकते हैं।
- संसार से आशा करने में ही संसार की दासता निहित है।
- संसार की दासता में ही समस्त अभाव निहित हैं।
- वर्तमान की वेदना ही भविष्य की उपलब्धि है।
- जिसके न होने की वेदना है, वह होने लगता है और जिसके होने की वेदना है, वह अपने आप मिट जाता है।
- सम्बन्ध रखते हुये सेवा न करना बन्धन है।
- संग्रह की हुई सम्पति निर्धनों की धरोहर है।
- समस्त बल निर्बलों की ही वस्तु है।
- आवश्यकता की उत्पत्ति ही भिक्षा है।
- अधिकार लालसा में ही हिंसा निहित है।
- अधिकार के त्याग में ही अहिंसा की प्रतिष्ठा है।
- दूसरों के अधिकार की रक्षा में ही न्याय निहित है।
- अहिंसा की प्रतिष्ठा में ही क्षमाशीलता, अक्रोध आदि गुणों की अभिव्यक्ति होती है।
- क्षमाशीलता बैरभाव को खा जाती है।
- अक्रोध से विस्मृति का नाश होता है।
- स्मृति में ही कर्त्तव्यपरायणता, बोध तथा प्रेम निहित है।
- जो कुछ भी चाहता है, वह होने में प्रसन्न और करने में सावधान नहीं रह सकता।

- करने में सावधान रहने में ही अकर्त्तव्य का नाश है।
- होने में प्रसन्न रहने में ही असंगता निहित है।
- असंगता में निर्विकारता निहित है।
- समस्त विकास निरभिमानता में निहित है।
- अभिमान ह्रास का मूल है।
- 'प्रेम' क्षति, पूर्ति, निवृत्ति से रहित है।
- प्रेम का आरम्भ है, अन्त नहीं।
- प्रेम की अभिव्यक्ति में ही काम का नाश है।
- प्रेम प्रेमास्पद का स्वभाव और प्रेमी का जीवन है।
- 'प्रेम' स्वरूप से दिव्य, चिन्मय तथा नित्य है।
- प्रेम के अतिरिक्त और कुछ प्राप्तव्य नहीं है।
- प्रेम की प्राप्ति में ही जीवन की पूर्णता है।
- सेवा और त्याग में ही कर्त्तव्य निहित है।
- दीर्घकाल के श्रम की अपेक्षा अल्प से अल्प काल का विश्राम कहीं अधिक महत्त्व की वस्तु है।
- सुख की आशा ही नीरसता की जननी है।
- नीरसता ही विकारों की भूमि है।
- करुणा सुख भोग की रुचि को और प्रसन्नता नीरसता को खा लेती है।
- नीरसता के नाश में ही निर्विकार जीवन निहित है।
- खोज उसी की होती है, जिसकी जिज्ञासा है।
- प्रीति उसी में होती है, जिसमें विश्वास है।
- स्वाधीनता पराधीनता को खा लेती है।
- स्वाधीनता-जनित रस से सन्तुष्ट होने पर अनन्त रस की अभिव्यक्ति

स्वतः होती है।

- ❖ काम आओ और कुछ न चाहो-यही जीवन का ध्रुव सत्य है।
- ❖ सत्य की खोज के लिए सर्वस्व समर्पण कर दो।
- ❖ उस सुख का त्याग कर दो, जो किसी का दुःख हो।
- ❖ कार्य उसी का सिद्ध होता है, जो दूसरों के काम आता है।
- ❖ स्वार्थ-भाव मिटाने के लिये सेवा करने का स्वभाव बनाओ। क्योंकि सेवा करने से स्वार्थ-भाव मिट जाता है।
- ❖ अशुद्ध संकल्पों के त्याग में ही शुद्ध संकल्पों की उत्पत्ति होती है।

संतवाणी

1. परिवर्तनशील जगत् की प्रत्येक वस्तु निरन्तर काल-रूप अग्नि में जल रही है, अतः वर्तमान में ही योग्यतानुसार प्रयत्न कर प्रेम-पात्र से अभिन्न होने का प्रयास करना चाहिए।
2. अपने दुःख का कारण अपने से भिन्न किसी और को नहीं समझना चाहिए।
3. अपनी निर्बलता को अपनी दृष्टि से देखने का प्रयत्न करना चाहिए।
4. प्रेमपात्र के नाते, सभी सम्बन्धियों के साथ निष्कपट तथा पवित्रता-पूर्वक माने हुए भाव के अनुरूप ही आवश्यक व्यवहार करने चाहिए।
5. अपनी ओर से किए हुए व्यवहार के बदले में अपने अनुकूल व्यवहार की आशा नहीं करनी चाहिए।
6. थोड़े समय भी बेकार चेष्टाएँ नहीं करनी चाहिएँ, क्योंकि व्यर्थ चेष्टाओं के निरोध से जितेन्द्रियता स्वाभाविक रुप में प्राप्त हो जाती हैं।